प्रकाशक
एस० बी० सिंह
काशी-पुस्तक-भण्डार
चौक, बनारस

मुद्रक
राममोहन शास्त्री
श्रीगोविन्द मुद्रणालय,
बुलानाला, बनारस।

समर्पण

हिन्दीके प्रसिद्ध कवि, उर्दू काव्यके मर्म्मज्ञ, साहित्यबन्धु श्रीजगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' के कर-कमलोंमें—

'गिरीश'

दो शब्द

यह पुस्तक भी 'हिन्दीके वर्त्तमान कवि और उनका काव्य' की शैलीपर तैयार की गयी है, प्रवृत्ति संकलनकी है और यत्र तत्र सम्पूर्ण वस्तुको एक सूत्रमें गूँथनेके उद्देश्यसे आलोचना की गयी है। आलोचनाके समावेशके लिए शीर्षक निर्धारित कर लिये गये हैं, जिन्हें निश्चित करते समय यह बात ध्यानमें रक्खी गई है कि उर्दूके प्रकृत स्वरूपकी एक संक्षिप्त झलक पाठकोंको दे दी जाय। विषय-सूचीमें प्रत्येक अध्यायमें आनेवाले कवियोंके नाम स्वतन्त्र रूपसे अलग-अलग दे दिये गये हैं। इस प्रकारकी पुस्तकोंमें कुछ असुविधा होती है—एक ओर तो वे उत्तमोत्तम सकलन नहीं प्रस्तुत कर पातीं और दूसरी ओर उनमें समीक्षाकी उतनी गुंजाइश नहीं रहती जितनी पाठकोंको तृप्ति प्रदान कर सके। इन सीमाओंको जानकर जो पाठक इस पुस्तकके सम्बन्धमें अपना मत देंगे उनके प्रति मैं आभारी होऊँगा।

जिन कवियोंकी कवितायें इस पुस्तकमें ली गयी हैं उन्हें धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। इस संकलनकी तैयारीमें मैंने 'कविता कौमुदी', 'शेरो सुखन', 'शेरो शायरी' आदि ग्रन्थोंसे सहायता ली है, तदर्थ उनके रचयिताओंको धन्यवाद देता हूँ।

यदि किन्हीं वर्त्तमान प्रतिष्ठित कवि महोदयकी कविता इस संग्रहमें न आ सकी हो, तो पाठक इसे मेरा प्रमाद तो समझें ही, साथ ही विवशता भी समझें, क्योंकि इस पुस्तकके विभिन्न अध्यायोंमें जो चर्चाएँ चलायी गयी हैं, उनमें ऐसी त्रुटियोंका हो जाना सर्वथा स्वभाविक है। फिर भी इस सम्बन्धमें प्राप्त सूचनाओंका मैं आदर करूँगा और पुस्तकके दूसरे संस्करणमें यथाशक्ति उपयोग भी करूँगा।

प्रयाग
जन्माष्टमी स० २०११

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

प्रस्तावना

गिरीशजी द्वारा संपादित 'उर्दू के कवि और उनका काव्य' उर्दू काव्यके हिंदीमें प्राप्त अन्य संकलनोंसे सर्वथा भिन्न है। यह संकलन आलोचनात्मक है और साथ-साथ परिचयात्मक भी। एक ओर इसमें हिन्दीके एक शिखरस्पर्शी आलोचकके मौलिक विचारोंसे पाठक अवगत हो जाता है; दूसरी ओर उसे काव्यको हृदयंगम करनेके लिए एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार इस आलोचनात्मक संकलनकी दुहरी महत्ता है। पुस्तकके प्रारंभमें एक विस्तृत वक्तव्य देकर कालक्रमशः या महत्व-क्रमशः कवियों की रचनाओंको एकत्र कर देनेका कार्य सरल है किन्तु काव्यको आलोच्य या उद्देश्य विषयोंकी सार्थक व्यवस्थामें बाँधना श्रमसाध्य है। प्रस्तुत संकलनके पीछे कितना श्रम और कितनी सार्थकता है, इसीसे स्पष्ट है।

उर्दूको भाषा विज्ञानका अध्येता हिन्दीकी एक शैली ही मानता है। वह एक स्वतन्त्र भाषा नहीं। अवश्य वह शैली अभारतीय है। उर्दू भाषा या शैली ? तथा 'उर्दू शैलीकी अभारतीयता' नामक अध्यायोंमें उर्दूका भाषा और शैली-पक्षकी मीमांसासे संयुत काव्य-संकलन है। 'उर्दू काव्यमें प्रेम' का विस्तृत साहित्य है। 'गिरीश'जीने उसकी भी गूढ़ और तलगामी विवेचना की है और उसके स्वरका निर्णयात्मक निर्धारण किया है। 'उर्दू काव्यकी

उत्कृष्टता' नामक अध्यायमें उर्दूके उत्कृष्टतम कवियोंकी रचनाएँ परिचय सहित मिलती हैं।

उर्दू शैली भारतमें ही फली-फूली। अत: उसने हिन्दी-काव्य को प्रभावित भी किया। उस प्रभावका विश्लेषणपूर्ण परिचय 'उर्दूके काव्यका हिन्दी कवियों पर प्रभाव' नामक अध्यायमें मिलता है। जिन कारणोंसे उर्दू हिन्दी परस्पर विच्छिन्न और भिन्न बनी रहीं, उर्दू हिन्दीके विशाल अंचलमें समाहित न हो सकी और उर्दूकी स्वतन्त्र सत्ता रही, उनका विवेचन गिरीशजीने अंतिम अध्यायमें किया है और 'शेष' में अवशिष्टको संकलित कर दिया है। स्पष्ट ही संपूर्ण संकलन एक विशिष्ट व्यवस्थामें बँधा है, किन्तु इसका संकलन अक्षुण्ण है।

प्रस्तुत संकलन हिन्दी प्रेमियोंके लिये उर्दूके संबधमें एक सहानुभूतिपूर्ण नई रीतिसे सोचने समझनेका माध्यम है। सपादक और प्रकाशक, दोनों बधाईके पात्र हैं।

प्रयाग
भाद्रपद, शुक्ल तृतीया, २०११ } डा० उदयनारायण तिवारी

उर्दू के कवि और उनका काव्य

पुस्तक सम्पादक

महाकवि हरिऔध, गुप्त जी की काव्यधारा, मर्मज्ञ-प्रवर श्रीरामचन्द्र शुक्ल आदि के रचयिता, प्रमुख आलोचक, हिन्दी साहित्य जगत् के चिरपरिचित

श्री गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश"

[जन्म-सम्वत् १९५५]

विषय-सूची

अनूठी पढ़ने योग्य पुस्तकें

बिहार सरकारकी हिन्दी-ग्रन्थ-सूचीमें हमारी चुनी हुई पुस्तकें, सन् १९५२–५४

क्रम-संख्या कहानी (ए)

५०८ कहानीपुञ्ज—श्रीसूर्य्यबलीसिंह— मू० ३)

विविध विषय

१८४ गीताञ्जलि (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) पद्यात्मक अ० लालधर त्रिपाठी प्रवासी ४॥)

उपन्यास (ग)

२९० आकर्षण—ले० बरजोरसिंह २॥)

२९५ मिलन-मन्दिर—ले० देवनारायण द्विवेदी ४)

महिलोपयोगी (त)

३४ कन्या-शिक्षादर्पण—ले० पार्वती देवी १)

३५ नारी-धर्म-शिक्षा—सतव्रता देवी २)

अध्यात्म, दर्शन, नीति (द)

१९० कुत्सित जीवन—महात्मागांधी १॥)

१९१ रामधुन—सूर्य्यबलीसिंह १)

१९२ सत्संग भजनमाला—सूर्य्यबलीसिंह १।)

१ मनोहर पत्र—भारतके महापुरुष, साहित्यक आदि ७)

२ दहेज—देवनारायण द्विवेदी उपन्यास २॥)

३ ब्रह्मचर्यकी महिमा—सूर्य्यबलीसिंह १॥)

४ हिन्दीके वर्त्तमान कवि और उनका काव्य— ४)

५ उर्दूके कवि और उनका काव्य— ४)

मिलनेका पता—काशी-पुस्तक-भण्डार चौक, बनारस।

उर्दू के कवि और उनका काव्य

प्यारा वतन

जहाँ से बढकर जिमीं पै न्यारा जिगर का प्यारा वतन हमारा।
चमकता है आसमाँ पै सूरज जिमीं पै प्यारा वतन हमारा॥
खुदाने कर खूबियों को एकजा वनाया जिसको है एक नुमायश।
जहाँ की दौलत का है पिटारा रतन हमारा वतन हमारा॥
कहाँ है सानी हिमालय का कहाँ हैं गङ्गा यमुन सी नदियाँ।
नियामतों से भरा वो कुदरत का है सँवारा वतन हमारा॥
अयाँ है सारे जहाँ पै जिसकी दिलेरी अजमत ओ पारसाई।
धरम का ऊँचा निशानवाला निराला प्यारा वतन हमारा॥
बढ़ाई जिस सरजमींकी जीनत जनमले गाँधी जवाहरों ने।
जिमी पै "माधो" हिनूदो मुस्लिमका एक सहारा वतन हमारा॥

न छोड़ूँगा, न छोड़ूँगा, फटे इस तेरे दामन को।
कहूँगा मरते दमतक प्रेममय भारत हमारा है॥
कहो 'माधव', इसाई, हिन्दुओ, मुसलिम सब एकस्वर से।
ये हिन्दोस्ताँ हमारा है, हमारा है, हमारा है॥

—राष्ट्र कवि माधव शुक्ल

प्रवेश

१—उर्दूका स्वरूप

देशकी परिवर्तित परिस्थितियोंमें उर्दू भाषा और उर्दू साहित्यका क्या उपयोग होगा? इस सम्बन्धमें प्रायः उर्दू हितैषियोंकी ओरसे चिन्ता प्रकटकी जाती है। उर्दू अपने जन्मकालसे ही बड़ी भाग्यवान् रही है; अल्पवयमें ही उसे राजकीय कृपा प्राप्त हुई और यद्यपि शासक बदले, किन्तु उसके प्रति अनुग्रहमें कोई कमी नहीं आई। देश-भाषाको क्षति पहुँची, वह दर-दर ठोकरें खाती रही, किन्तु राज-सम्मानिता उर्दूकी आन-बानमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। राज-कृपाके स्थानमें यदि उर्दूने जनताकी कृपा भी सम्पादित करनेका प्रयत्न किया होता तो आज उसके भाग्यके सम्बन्धमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता ही न पड़ती।

जो लोग उर्दूको एक स्वतन्त्र भाषा मानते हैं, जिसके मिट जानेकी आशंका सामने उपस्थित है, उनका विचलित होना स्वाभाविक है। जिस भाषामें एकसे एक सुन्दर काव्य हैं, जिसकी मुक्तक कविताओंकी जोड़की चीज अन्य भाषाओंमें शायद ही मिल सके, जिसका गद्य बहुत सशक्त और प्रभावशाली है, उसका अस्तित्व लोप हो जायगा तो उससे देशकी बहुत बड़ी क्षति होगी—उर्दूकी जीवन-रक्षाके निमित्त वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं।

किन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो देशभक्त और उर्दू-प्रेमी होनेके साथ ही साथ उर्दूको स्वतंत्र भाषा न मानकर उसे हिन्दीकी एक शैली-रूपमें ग्रहण करते हैं। देशभाषामें अरबी और फारसीके शब्द भरकर ही तथा अनेक विदेशी तत्त्वोंके समावेशके आधारपर ही इस शैलीका निर्माण हुआ है। स्वदेशीय तत्त्वोंके प्रति ज्यों-ज्यों अनुराग बढ़ता जायगा त्यों त्यों विदेशी तत्त्वोंका परिहार होता चलना स्वाभाविक है; इसी प्रकार देश

शब्दोंकी तुलनामें अरबी और फारसी शब्दोंको बहुत दिनोंतक प्राथमिकता नहीं दी जा सकती। रही केवल लिपि की बात, सो देवनागरीके प्रचारको रोककर फारसी और अरबी लिपिमें लिखनेका आग्रह भी अधिक विचारके योग्य नहीं है। ऐसी स्थितिमें उर्दू जिन विभिन्नताओंको लेकर देशभाषासे पृथक् हुई थी उनमेंसे क्रमशः सबके तिरोहित हो जानेपर उसकी शैलीका समाप्त हो जाना निश्चित है और इससे देशकी राई-बराबर भी हानि नहीं होगी। इस मतको मान्यता देनेवालोंका यह कहना है कि उर्दू साम्राज्य-वादके एक चिह्नके रूपमें आयी और साम्राज्यवादके नाशके साथ साथ उसका भी नाश अवश्यम्भावी है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह मत सर्वथा अप्रामाणिक है।

उर्दू का भविष्य चाहे जैसा हो, किन्तु इस सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि उर्दू-साहित्यकी रक्षा होनी चाहिए, क्योंकि वह हमारी ही राष्ट्रीय सम्पत्ति है। उर्दू-साहित्यमें जितना अंश रचनात्मक है, अध्ययनके योग्य है उसका अध्ययन होना चाहिए। यदि उर्दू काव्यमें अथवा उर्दू गद्यमें शक्तिसम्पन्न विचार और भाव हैं तो उर्दू लाख प्रयत्न करनेपर भी मिट नहीं सकेगी, उसके प्रेमी पाठक उसे जीवित रक्खेंगे।

किन्तु किसी भी अवस्थामें हिम्मत न हारनेवाले उर्दू के कुछ हितैषियोंने थोड़े दिनोंसे यह कहना शुरू किया है कि 'उर्दू समस्त उत्तरप्रदेशके घर-घरमें बोली जाती है,' वे उसे देशभाषाका रूप देकर उपयोगिनी सिद्ध करना चाहते हैं। इसी तरहकी बात मौलाना फारुकीने कुछ समय पहले अपने एक अँगरेजी लेखमें इस प्रकार कही थी :—

"I challenge that there is not a single Hindu home in these provinces where Urdu is not spoken". अर्थात् 'मैं चुनौती देकर कहता हूँ कि इन प्रान्तोंमें एक भी हिन्दू घर ऐसा नहीं है जहाँ उर्दू न बोली जाती हो।' इन दोनों बातोंपर यदि एक साथ विचार करें तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि उर्दू

उत्तरप्रदेशके देहातोंमें हिन्दुओंके घरोंमें बोली और समझी जाती है और हिन्दी नामकी कोई भाषा उत्तरप्रदेशमें कहीं है ही नहीं। अस्तु, मैं नीचे एक छोटा-सा उर्दू अवतरण देता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि उर्दूके समर्थकगण इसे बोलने अथवा समझनेकी क्षमता रखनेवाले घर, देहातोंकी बात जाने दीजिए, काशी, प्रयाग, कानपुर, आगरा अथवा लखनऊमें ही खोज निकालें, देखें कितने लाख उतरते हैं। अवतरण यह है :—

"सचरमे इस आमेजिशके यह ज़बान रेख़तासे मुसम्मा हुई। जब सनाई व जहूरी नज़्म व नस्र फ़ारसीमें बानी तर्ज़ जदीदके हुए हैं, वली गुजराती ग़ज़ल रेख़ताकी ईजादमें सभोंका मुक़्तदा और उस्ताद है।"

—'मद्रासमें उर्दू', सन् १६३६

अरबी और फ़ारसी शब्दोंसे लदी हुई इस 'उर्दू-ए-मुअल्ला' को प्रत्येक हिन्दू घरकी बोली बतलाकर समझदार लोगोंकी आँखोंमें अधिक समयतक धूल नहीं झोंकी जा सकती।

थोड़ी देरके लिए यदि हम इस बातको मान भी लें कि उत्तरप्रदेशके प्रत्येक घरमें उर्दू बोली जाती है तो हमारा प्रश्न यह है कि उर्दूके प्रेमीगण घबरा क्यों रहे हैं? उर्दूको राजभाषा बनानेके लिए इतना सिरतोड़ परिश्रम क्यों कर रहे हैं? क्या वे इस बातको नहीं जानते कि हिन्दीने राजकीय उपेक्षा और तिरस्कारकी चार शताब्दियाँ व्यतीत करनेपर अपना सम्मानित पद आज प्राप्त किया है! इतनी दीर्घ काल व्यापिनी उपेक्षाको सहन करके भी यदि हिन्दी आज जीवित है तो उसका यही कारण है कि उसकी जड़ें जनताके हृदयमें हैं। यदि उर्दूकी जड़ें भी जनताके हृदयमें हों तो उर्दूके उन्नायकोंसे मेरा अनुरोध है कि केवल पचीस वर्षोंतक राजकीय आश्रय प्राप्त करनेकी चेष्टासे विरत रहकर वे उन लोगोंके सामने इस कथनकी सत्यता प्रमाणित होने दें, जिन्हें इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे सन्देह है।

भाषा विज्ञानका साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि हमारे देशमें

साहित्यकी सम्मानित भाषासे पृथक् जनताके बीचमें बोली जानेवाली लोकभाषा 'देषभाषा' नामसे सम्बोधित होती रही है। विक्रमकी तीसरी सदीमें भरत मुनिने उक्त प्रकारकी जन भाषाको 'देशभाषा' ही कहा है। जब प्राकृत, पालि और अपभ्रंश लोकभाषाके रूपमें जनतामें प्रचलित थीं तब ये भी देशभाषा ही कही जाती थीं। पन्द्रहवीं शताब्दिमें विद्यापतिने अपने काव्यमें 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा' में 'देशवाणी' शब्द का ही रूपान्तर करके प्रयोग किया था। आगेके कवियोंने 'देश' शब्दको छोड़कर केवल 'भाषा' शब्दका व्यवहार प्रचलित किया। तुलसीदासजीने लिखा है —

भाषा-बद्ध करव मैं सोई।
मोरे जिय प्रबोध जेहि होई।

'भाषा' शब्द का प्रयोग केशवदासने भी किया है :—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुलके दास।
तिन *भाषा* कविता करी शठ मति केशवदास।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि तुलसीदास और केशवदासके पूर्ववर्त्ती एव सम सामयिक मुसलमान कवि उक्त देशभाषाको ही 'हिन्दी' कहते थे। उदाहरणके लिए नीचेकी पक्तियाँ देखिए —

१—मुश्क काफ़ूरस्त कस्तूरी कपूर।
हिन्दवी आनन्द शादी और सरूर।
सोजनो रिश्ता *बहिन्दी* सूई ताग

—अमीर खुसरो

२—तुरकी, अरबी, *हिन्दवी* भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का सबै सराहै ताहि।

—मलिक मुहम्मद जायसी

इस सम्बन्धमें मैं अधिक विस्तारमें नहीं जा सकूँगा, सक्षेपमें इतना ही कथन यथेष्ट है कि उक्त देश-भाषाके लिए 'हिन्दी' नामका हमारे द्वारा

हण मुसलमान साहित्यकारोंके आग्रहके कारण ही सम्भव हुआ। यह हमारी भाषा-विषयक उदारता थी जो हमने इस फारसी शब्दको अपना लिया।

हमारी इसी देशभाषामें अरबी फारसी शब्दोंका बहुत अधिक समावेश करके, भारतीय विशिष्ट व्यक्तियों, पहाड़ों, नदियों, चिड़ियों, फूलों आदिका बहिष्कार करके तथा उनके स्थानमें फारसके विशिष्ट व्यक्तियों, पहाड़ों, नदियों, चिड़ियों, फूलों आदिको गौरवान्वित बनाकर एवं अभिव्यक्तिकी शैलीमें भी परिवर्तन करके एक नई भाषा मुहम्मदशाहके जमानेमें उर्दूके प्रथम कवि 'वली' द्वारा संस्कार-सम्पन्न की गयी। इस नवनिर्मित उर्दूमें, फारसी और अरबी शब्दोंकी ठूँसठाँस कितने अस्वाभाविक ढंगसे की गयी, इसका उल्लेख स्वयं मुसलमान लेखकोंने किया है। सैयद इमदादुल्लाह साहिब महोदय अपने लेखमें कहते हैं :—

"मौलवी वहीदुद्दीन साहब सलीम पानीपतीने अपनी किताब 'वज़ा इस्तलाहात इल्मिया' में 'फरहंग आसफियाका हवाला देकर लिखा है के उर्दू जबानमें खालिस अरबी फारसी अलफाज़की तादाद बकद्र ¾ के है। सवाल यह पैदा होता है कि अरब और ईरानकी ज़बानोंमें भी हमारे हिन्दुस्तानके ¾ अलफाज़ मौजूद हैं या नहीं। और अगर नहीं हैं तो हमें भी उनका बायकाट करनेका हक़ है।"

—'ज़माना', जुलाई सन् १९३७

बस, उर्दू जबानमें खालिस अरबी फारसी अलफाज़की तादाद बकद्र ¾ ही का तो झगड़ा है। हम समस्त अरबी फारसी शब्दोंके बायकाटकी बात भी नहीं चला रहे हैं। इनमेंसे कुछ ऐसे भी होंगे, जिनसे हमारे कानों और हमारे हृदयका पूर्ण परिचय हो गया है, जो हमारी प्रकृतिमें पूर्णतया एकीकृत हो गये हैं; उन्हें अपनेसे पृथक् करना अपने ही अंगको काटकर अलग कर देनेके बराबर होगा। किन्तु उन्हें छोड़कर शेषका बहिष्कार करना और उनका स्थान संस्कृतके तत्सम अथवा तद्भव शब्दोंको

देना हमारे राष्ट्रीय विकासके लिए अनिवार्य्यतः आवश्यक है। यह बहिष्कार उतना ही आवश्यक है जितना बद मकानको खोलनेपर झाड़ू देना। इस झाड़ू लगनेके बाद, विदेशीपन निकल जानेके बाद, उर्दूके प्रेमी देखेंगे और हम भी देखेंगे कि उर्दू और कुछ नहीं हमारी वही देशभाषा है जिसे हम बहुत समयतक 'भाषा' तथा मुसलमान कवि और शासक 'हिन्दी' शब्दसे सम्बोधित करते रहे। मुसल्मानोंके प्रति अपने सौहार्दका परिचय देनेके ही लिए हमने क्रमशः 'भाषा' के स्थानमें हिन्दी नामकरणको स्वीकार कर लिया। लेकिन एक ओर तो मिलनेके लिए हमने हाथ बढ़ाया दूसरी ओर मुसलमान साहित्यकारों और नेताओंने हिन्दीको नमस्कार कर लिया। आज मैं फिर उर्दू के लेखकों और उन्नायकोंसे आग्रह करता हूँ कि स्वतन्त्र भारतमें अपने सुन्दर भविष्यका निर्माण करनेके लिए वे ईरानी और अरबी सामग्रीसे काम न लें। ऐसा करना अपने साथ और अपने देशके साथ अन्याय होगा। विचारों और भावोंमें एकता लानेके लिए एक ही भाषा और एक ही लिपि होनी चाहिए, देखिए सैयद इब्रहसन शारिक महोदय भी यही कह रहे हैं :—

"अगर हिन्दू और मुसलमानोंको एक-दिल होना है तो उनको एक ही ज़बान और रस्मुल्खत रखना होगा। वही वहदत खयाल पैदा करने और आपसमें मुहब्बत व इखलास कायम करनेका बेहतरीन जरिया है।"

—(ज़माना, जुलाई, १९३७)

स्पष्ट है कि हिंदी भाषा और देवनागरी लिपिको ग्रहण करके ही देशके हिन्दू और मुसल्मान सच्ची भारतीय राष्ट्रीयताका विकास कर सकेंगे। ऐसा करनेके लिए यदि अरबी और ईरानी संस्कृतिका कहीं बहिष्कार भी दिखायी पड़ता है तो वह हमारी राष्ट्रीयताकी प्रगतिके लिए उतना ही आवश्यक है जितना किसी समय विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार आवश्यक था। ऐसी स्थितिमें उसके जो समर्थक अरबी और ईरानी संस्कृतिका अग्राह्य स्वरूप हम पर लादने और लादे रहनेके लिए कृत-संकल्प हैं उन्हें हमारा वही

उत्तर होगा जो महात्मा गांधीने गोलमेज-परिषद्के अवसरपर अपने प्रवास-कालमें विलायतके मजदूरोंके मेहमान रूपमें उपस्थित होकर दिया था। महात्माजीके कथनका साराश यह था कि विलायतके मजदूर सहानुभूतिके अधिकारी हैं, किन्तु भारतका मजदूर अधिक शोचनीय स्थितिमें होनेके कारण अधिक सहानुभूतिका पात्र है; इसीका अनुसरण करते हुए हम यह कह सकते हैं कि अरबी और ईरानी संस्कृतिके प्रति आदर-भाव रखते हुए भी हम अपना स्नेह तथा अपनी श्रद्धा और सेवा पहले अपनी भारतीय संस्कृतिको अर्पित करेंगे, जिसके निर्मल रूपमें उपस्थित होनेपर ही हमारे राष्ट्रीय जीवनका विकास अग्रसर हो सकेगा।

हिंदी भाषी जनताको और हिन्दी भाषाको ठगनेकी प्रवृत्ति आज चार शताब्दियोंसे चली आ रही है। सम्राट् अकबरके शासनकालमें राजा टोडरमलने सरकारी दफ्तरोंसे हिन्दीको निकालकर उनमें फ़ारसीका प्रचलन किया। जनताको क्या असुविधा होगी, इसकी ओर उस सुव्यवस्थित शासन-कालमें भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। लगभग तीन शताब्दियोंतक इस अन्यायको सहन करनेके अनन्तर ईस्ट इंडिया कम्पनीके राज्यकालमें अधिकारियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया, तब एक सूचनामें जनताकी असुविधाकी बात इस प्रकार स्वीकार की गयी :—

"पच्छाँहके सदर बोर्डके साहबोंने यह ध्यान किया है कि कचहरीके सब काम फारसी जबानमें लिखा पढ़ा होनेसे सब लोगोंको बहुत हर्ज पड़ता है और बहुत कलप होता है।"

इस कारण साहबोंने निम्नलिखित आज्ञा प्रचारित की :—

"जिसका जो मामला सदर बोर्डमें हो सो अपना-अपना सवाल अपनी *हिन्दीकी बोली* में और फ़ारसीके नागरी अच्छरनमें लिखके दाखिल करे कि डाकपर भेजे और सवाल जौन अच्छरनमें लिखा हो तौने अच्छरनमें और हिन्दी बोलीमें उसपर हुकुम लिखा जायगा।"

किन्तु आगे चलकर यह सारी लोक-हितैषणा वञ्चना ही प्रमाणित

हुई, शीघ्र ही हिन्दीके स्थानपर अरबी फारसीसे लदी हुई उर्दू और देवनागरी लिपिके स्थानपर अरबी अथवा फारसी लिपि आ गयी।

गत ईस्वी उन्नीसवीं शताब्दिके अंतिम दशकमें हिंदीका प्रश्न फिर छेड़ा गया; एक शिष्टमंडलके अनुरोधको स्वीकार करके संयुक्त प्रदेशके तत्कालीन छोटे लाट सर ऐंटनी मैक्डानेलने सन् १८९८ में कचहरियोंमें देवनागरीलिपिके प्रवेशकी घोषणा प्रकाशित करायी। यह आज्ञा जितनी मात्रामें और जिस रूपमें कार्यान्वित हो सकी, उसके सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं।

देशभाषा हिंदीके साथ छल करनेके जो जो प्रयत्न किये गये हैं उनकी सूची बहुत लम्बी है। उनमेंसे सबसे नवीनतम धोखा-धड़ी है उर्दूके अरबी-फारसी शब्दोंसे आक्रान्त ढाँचेमें संस्कृतके दो-चार शब्दोंका समावेश करके उसे 'हिन्दुस्तानी' नामसे प्रचलित करना और उसीको देशभाषाके रूपमें घोषित करना। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंदकी परम्पराका आज डा० ताराचंद और 'नयाहिंद'के सम्पादक श्री सुन्दरलाल निर्वाह किये चल रहे हैं। ब्रिटिश सरकारने हिंदी उर्दू-समर्थकोंके वाद-विवादके रूपमें दो बुल-बुलोंकी लड़ाई खूब देखी, साथ ही समझौतेके रूपमें 'हिन्दुस्तानी'का मरहला प्रस्तुत करके अपनी प्रसिद्ध बंदर-बाँट वाली नीतिकी सफलता भी सिद्ध कर ली।

यह सब होनेपर भी हिंदी आजतक जीवित है और एक सुदीर्घ, सम्पन्न जीवनकी आशा कर रही है। यदि मौलाना फारूकी तथा उनकेसे दृष्टिकोणवाले लोगोंकी सचमुच यह धारणा है कि उर्दू उत्तरप्रदेशके एक-एक घरमें बोली जाती है तो उन्हें घबरानेकी क्या आवश्यकता है? हिंदीका उदाहरण उनके सामने है और यदि उर्दू देशभाषा है तो भविष्यमें वह उस रूपमें मान्य होकर रहेगी। इस बीच वे यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न करें कि वह वास्तवमें देशभाषा है और इसका सबसे उत्तम उपाय यही होगा कि वे उर्दूको राजकृपापर अवलम्बित होकर जीनेकी पराधीनतासे मुक्त

करके उसे जन-सेवामें भी नियोजित रहकर जीनेकी क्षमता रखनेवाली घोषित करें।

उर्दूके लेखकों और उन्नायकोंसे मेरा एक अनुरोध है। अरबी और फारसी संस्कृतिके प्रचारको लक्ष्य बनाकर जब आपने अठारहवीं शताब्दिके प्रथम चरणमें उर्दूको हिन्दीसे स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया था तबकी परिस्थिति और आजकी परिस्थितिमें धरती-आसमानका अंतर होगया है। देशकी पराधीनताके वातावरणमें आपके द्वारा विदेशी संस्कृतिकी उपासना सफलतापूर्वक सम्भव हो सकी, किन्तु आज भारतके स्वाधीन होनेपर आपको भारतकी सेवा करनी पड़ेगी। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि भारतकी सेवा करनेका निश्चय करते ही आपके सामनेसे उर्दू-ए-मुअल्लाका ऐश्वर्य्य-सम्पन्न, विलासिता पीडित स्वरूप अतर्हित हो जायगा और अनायास ही देशभाषा अपने सरल सौन्दर्य्यको लेकर उपस्थित हो जायगी।

देशभाषा हिन्दीको अपना साधन बनाकर हिन्दू और मुसलमान नवीन भारतके निर्माणमें लगे तथा मौलाना अकबरकी निम्नलिखित पंक्तियोंको सदैव स्मरण रखकर अरचनात्मक कलह और मतभेदसे बचे, यही ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है।

"हिन्दू मुसलिम एक हैं दोनों
यानी ये दोनों एशियाई हैं।
हमवतन, हमज़वाँ ओ हमकिस्मत
क्यों न कह दूं कि भाई-भाई हैं।

२—उर्दूकी उत्पत्ति और उसके छंद

उर्दू हिन्दीकी एक शैली मात्र है, इस सम्बन्धमें सक्षेपमें कुछ कहा जा चुका। अब यह जाननेकी आवश्यकता है कि 'उर्दू' शब्द आया कहाँसे!

औरंगाबाद, दक्खिनके निवासी मौलाना शम्सुद्दीन 'वली' उर्दूके

प्रथम शायर माने जाते हैं। इनका समय सन् १६६८ से सन् १७७४ ई० तक माना जाता है। अपने जीवनकालमें वे दो बार दिल्ली गये, पहली बार सन् १७०० में और दूसरी बार सन् १७२४ में। पहली बार इनकी भेंट शाह गुलशन नामक शायरसे हुई जिनकी उस समयके शायरोंमें बड़ी प्रतिष्ठा थी। शाह गुलशनने 'वली' का ध्यान फारसी शब्दोंके प्रयोगकी ओर आकर्षित किया। 'वली' दक्खिनी हिन्दीके वातावरणमे पले थे और दक्खिनी हिन्दीमे ही रचना करते थे। यह दक्खिनी हिन्दी वही बोली थी जो दिल्लीके आसपास बोली जाती थी और जिसे दिल्लीसे दक्खिन जानेवाले शासकों, दरवेशों आदिने दक्खिनमें पहुँचाया था। शाह गुलशनके सुझावको स्वीकार करके 'वली' ने अमीर खुसरोके समयसे चली आती हुई देशी काव्य-भाषामें अरबी-फारसी शब्दोंका समावेश करके उसे दिल्लीकी रुचिके अनुकूल बनाया और सन् १७२४ में जब वे पुन दिल्ली गये तो 'कलामें रेख्ता' उनके साथ था।

उर्दू तुर्की भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ है लश्कर, छावनी। इस कारण दिल्लीमें लाल क़िलेके सामने शाही छावनीको उर्दू बाज़ार कहा जाने लगा। इस बाज़ारमें जहाँ सभी तरहके लोग इकट्ठे होते थे, एक मिली-जुली खिचड़ी भाषा बोली जाती थी। बादमें उर्दू शब्दका प्रयोग इसी भाषाके लिये किया जाने लगा। रेख्ता और शिष्ट उर्दू में ऐसा सादृश्य दिखायी पड़ा कि दोनोंका प्रयोग पर्यायवाची शब्दोंके रूपमें होने लगा। सन् १७९७ ई० में सैयद अताहुसेन तहसीनने अपने अनूदित 'चहारदरवेश' नामक ग्रन्थकी भूमिकामें अपनी भाषा रेख्ता, हिन्दी, उर्दू-ए-मुअल्ला बताया। यह स्मरण रखना चाहिए कि अरबी-फारसीके बहुल शब्द-प्रयोगमयी रेख्ता अथवा उर्दू-ए-मुअल्लाको भी अभी हिन्दी कहना बद नहीं कर दिया गया था। क्रमश' 'हिन्दी' शब्दके प्रयोगकी प्रवृत्ति शिथिल हुई, रेख्ता कहना भी रुका और 'उर्दू' के व्यवहारके लिए मार्ग परिष्कृत हो गया।

ग़ज़ल

उर्दू काव्यमें ग़ज़ल का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। ग़जलका अर्थ है प्रेमकाव्य अथवा स्त्रियोंकी चर्चा करना। गजलके भावको ठीक-ठीक समझनेके लिए निम्नलिखित थोड़ेसे शब्दोंका अर्थ समझ लेना चाहिए—

शब्द		अर्थ
फ़िराक़	=	विरह
इश्क़	=	प्रेम
वस्ल	=	मिलन
यास	=	निराशा
इश्तयाक़	=	अनुराग
हसरत	=	चाह

ग़जलकी आलोचना करते हुए मौलाना हाली कहते हैं:—

'गजलमें जो इश्क़िया मज़ामीन बाँधे जावें वे ऐसे आमा अलफ़ाज़में अदा किये जायँ जो दोस्ती और मुहब्बतके तमाम जिस्मानी और रूहानी ताल्लुक़ातपर हावी हो और जहाँतक हो सके ऐसा कोई लफ़्ज़ न आने पाये, जिससे माशूक़ औरत या मर्द मालूम हो सके। माशूक़को हमेशा मुज़क्कर बाँधना चाहिए और अमरदपरस्तीके खयालात क़तई बंद कर दिये जायँ। अगर हबीब परदादार है तो कौन ऐसा बेवकूफ़ है जो अपनी बीबीके रान, तिल, बाल वग़ैरहका हुलिया दूसरेको बताये और अगर हबीब बाजारी है तो उसका जिक्र करना अपनी ही रुसवाईका ढिंढोरा पीटना है।"

ग़ज़लमें कहीं-कहीं प्रेमपात्रके स्थानपर पुरुषकी ओर लक्ष्य किया जाता है, जिसका ठीक उलटा संस्कृत और हिन्दीमें होता है। कहीं संकेत इस प्रकार किया जाता है कि यह नहीं समझ पड़ता कि प्रेमपात्र स्त्री है या पुरुष। किन्तु कहीं-कहीं तो असंदिग्ध रूपसे प्रेमपात्र बालक होता है। उर्दू काव्यका अधिकांश बालकको ही प्रेमपात्रके रूपमें लेकर चला है।

क़ाफ़िया और रदीफ

दो मिसरोंमें जो अक्षर या शब्द अन्तमें आता है उसे 'रदीफ' कहते हैं। उदाहरणके लिए--

'सुनते हैं हम तो ये अफ़साने।
जिसने देखा हो वो जाने।
—अकबर

यहाँ 'ने' रदीफ है।

रदीफ के पहले दोनों मिसरोंमें जो समान स्वरके अक्षर या शब्द हों उन्हें 'काफिया' कहते हैं। उक्त चरणोंमें 'सा' और 'जा' काफिए हैं। इसे हिन्दीमें तुक कहते हैं।

मतला

ग़ज़लके दो चरणोंको *मतला* कहते है। इनमें 'क़ाफ़िया' और 'रदीफ' दोनों पाये जाते हैं। उदाहरण--

ख़ूबरू .ख़ूब. काम करते हैं।
यक निगह में .ग़ुलाम करते हैं।

मकता

ग़ज़लके अन्तिम दो चरणोंमें शायर अपने उपनामका प्रयोग करता है। इन्हीं दोनों चरणोंको 'मकता' कहते हैं। उदाहरण —

ख़ूबरू आशना हैं 'फाइज़' के
मिल सभी राम राम करते हैं।

क़सीदा

किसीकी प्रशंसा में लिखी हुई कविताको, जिसमें पन्द्रह पदसे अधिक पाये जायँ, कसीदा कहते हैं।

मसनवी

जिस पद्यमें दो पद होते हैं और उनमें अन्त्यानुप्रास पाया जाता है उसे मसनवी कहते हैं।

मर्सिया

मर्सिया शोक-काव्यको कहते हैं। विशेष रूपसे 'हसन हुसेन' के मरणसे सम्बन्धित शोक-काव्यके लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

रुबाई

जिस गजलमें एक भावका विकास चार पदोंमें हो और उनमेंसे प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण अन्त्यानुप्राससे युक्त हो, उस ग़जलको गजलके स्थानमें रुबाई कहते हैं।

३—उर्दू काव्यका इतिहास

उर्दूका प्रथम कवि 'वली' है; दाऊद और सिराजका नाम उसके बाद लिया जाता है। वलीकी तुलनामें ये दोनों ही कवि अत्यन्त साधारण महत्त्वके हैं। ये दोनों ही औरंगाबाद-निवासी थे। वलीके दिल्ली पहुँचने पर ही रेख्ता अथवा उर्दूकी कविताका प्रचार हुआ, यह कहा जा चुका है। अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी तथा दक्खिनी हिन्दीके हिन्दू मुसलमान कवियोंको उर्दूके शायरोंमें गिनना ठीक नहीं है, ये देशभाषा हिन्दीके कवि हैं। जायसीको उर्दूके कवियोंमें लेनेका अर्थ तो यह है कि तुलसीदास, सूरदास आदि सभी उर्दूके कवि थे। इस प्रकारकी अस्त-व्यस्त बातें करनेसे उर्दू साहित्यका इतिहास समझनेमें कठिनाई बढ़ेगी।

वलीका कार्यकाल सन् १७४४ के लगभग समाप्त हुआ। किन्तु उनकी प्रथम दिल्ली-यात्राने जो बीज बो दिये थे वे फल लाये और उनकी द्वितीय यात्राके कुछ पूर्व ही दिल्लीमें रेख्ताके शायर उत्पन्न होने लगे। इनमें मुहम्मदशाह रँगीले सर्वप्रथम थे, इनकी शायरीका समय सन् १७१९ से समझना चाहिए।

देहलीके शायरोंमें फाइज़, आरज़ू, मज़हर, हातिम, मजनून, आबरू, नाजी, यकरंग, अहसन, फुगाका नाम लिया जाता है।

इन सबको उर्दूके प्रारम्भिक कवि मानना चाहिए।

उर्दू काव्यका मध्य युग सन् १७५० से सन् १८१४ तक माना जा सकता है। सन् १७३९ में जब मुहम्मदशाह रँगीलेके शासनारूढ रहते हुए नादिरशाहने दिल्लीपर आक्रमण किया और उसके परिणाम-स्वरूप अनाथ दिल्ली उजाड़ी गयी तथा क़त्लेआम किया गया तब बहुतसे शायर दिल्लीसे भागकर लखनऊ पहुँचे। इस प्रकार उर्दू काव्यके विकासमें एक नयी शाखा फूटी, देहलीकी ही तरह लखनऊ भी उर्दू काव्यका एक महत्वपूर्ण केन्द्र हो गया।

सन् १७५० से सन् १८१४ तककी कालावधिके कवियोंको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है—(१) सन् १७५० से सन् १८०० तक, दिल्लीमें बादशाह शाह आलमके शासनारूढ़ रहनेके समयके दिल्लीवाले कवि, (२) सन् १७७५ से सन् १७९७ ई० तकके लखनऊवाले कवि, जब लखनऊमें नवाब आसफुद्दौला शासनारूढ थे और (३) सन् १७९७ से सन् १८१४ ई० तकके लखनऊके कवि, जब लखनऊमें नवाब सआदत अली खाँके राज्य प्रबन्ध कालमें थे।

प्रथम और द्वितीय श्रेणियोंके अन्तर्गत निम्नलिखित कवियोंका समावेश किया जाता है :—

मीर, सौदा, सोज़, दर्द, ताबाँ, असर, अफसोस, हसरत, यक़ीन, बेदार, हिदायत, हज़ी आदि।

तृतीय श्रेणीके कवियोंमें मुसहफी, जुरअत, इंशा, नासिख, हबिब आदिका नाम लिया जाता है।

उर्दू काव्यका अर्वाचीन युगारम्भ सन् १८१५ से माना जाता है, जिसका पूर्वार्द्ध सन् १८५७ तक और उत्तरार्द्ध सन् १८५७ से आगे सन् १९०० तक चलता है। सन् १८१५ से सन् १८५७ तक लखनऊमें नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर और नवाब वाजिदअलीशाहका राज्याधिकार था। देहलीमें सन् १८३८ से सन् १८५७ तक बहादुरशाह 'ज़फर' शासनारूढ थे। ये स्वयं भी कविता करते थे।

उर्दूके उक्त कालीन कवियोंके लखनऊ दलमें निम्नलिखित कवि प्रसिद्ध हैं :—

अख्तर, नासिख, बर्क़, आज़ाद, रश्क, वज़ीर, मुनीर, रिन्द, नसीम, शरफ़, आतिश, सबा, असीर, जावेद, दरख्शा, जकी, लाल, अमीर, मीनाई, तसलीम आदि।

दिल्लीके शायरोंमें निम्नलिखित अपनी उत्कृष्टताके लिए प्रसिद्ध हैं:—

जौक़, मोमिन, शाहनसीर, ममनून, गालिब, आज़ुर्दा, जफ़र, दाग, नसीम, जहीर, अनवर, हाली, मज़हर, शेफ्ता, आज़ाद आदि।

उक्त कवियोंके अतिरिक्त नवाबोंने भी उर्दू में काव्य-रचना की।

उर्दू काव्यका वर्त्तमान काल बहुत महत्त्वपूर्ण है; उसमें क्रान्तिकारी कविता-सम्बन्धी प्रगति हिन्दीकी अपेक्षा कम नहीं है। श्रीजोश मलीहाबादी तथा श्रीरघुपतिसहाय फिराक़ जैसे कवि उसका नितनूतन शृंगार कर रहे हैं। किन्तु उसकी उपयोगिता तभी बढ़ेगी जब वह फ़ारसी और अरबी शब्दोंका मोह त्यागकर देशभाषाका स्वरूप फिर धारण करेगी। फ़ारसी लिपिसे भी उसकी मुक्ति शीघ्र होनी चाहिए।

४—उर्दू काव्यकी भावी दिशा

उर्दू काव्य की भावी दिशा क्या होनी चाहिए और हिंदी काव्यकी भावी दिशासे उसका कहाँतक साम्य और कहाँतक वैषम्य चल सकता है, इस सम्बन्धमें दो शब्द कहने की आवश्यकता है। यह तो निश्चित है कि विचारों और भावोंकी वह एकता जो भारतीय राष्ट्रके उत्थानके लिए आवश्यक है, उर्दू काव्य द्वारा भी संवर्द्धनीय रहेगी; क्योंकि यदि वह उसके विरोधमें खड़ा होगा तो उसका सम्पूर्ण अस्तित्व ही संकटमें पड़ जायगा। उर्दूके जो हितैषी यह चाहते हैं कि उनके व्यक्तित्वकी कुछ रक्षा हो जाय उन्हें चाहिए कि वे उसके भीतर घुसकर बैठे हुए विदेशी तत्त्वोंसे उसको मुक्त करें। आज हिंदी काव्यके अन्तर्गत व्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी आदिमें लिखित काव्य भी स्वीकृत है, उर्दूका अब ऐसा

स्वरूप हो जाना चाहिए कि हम उसके प्राचीन और नवीन काव्यको भी हिंदी काव्यक्षेत्रके भीतर ला सकें। उर्दू यदि देवनागरी लिपिमें लिखी जायगी और देश-हितको अग्रसर करनेवाली भावधारा एवं विचारश्रेणीको लेकर चलेगी तो थोड़ेसे अरबी-फारसीके शब्दोंके कारण कोई विशेष बाधा नहीं पड़ेगी। आज हिंदीसे सम्बद्ध होने पर भी ब्रजभाषा, अवधी आदिका व्यक्तित्व तो सुरक्षित ही है, उसी प्रकार उर्दूके विशिष्टता भी बनी रहेगी। उर्दूमें जो विलक्षण भाषागत संस्कार और मँजाव है, तद्भव शब्दप्रयोगके आधार पर खड़ा होनेवाला जो मँजाव है उसका राष्ट्रभाषा हिंदीके काव्य पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा।

उर्दू काव्यकी प्रारम्भिक और माध्यमिक धारा हिंदी काव्यकी विशिष्ट प्रकृत प्रवृत्तियोंके विरोधमें चली है, उसकी आधुनिक धारा हिंदी काव्यकी आधुनिक धाराके रचनात्मक तत्त्वोंको अपनानेकी ओर ही झुकती जान पड़ती है, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि उर्दू काव्यकी भावी दिशा हिंदी काव्यकी भावी धाराके अनुकूलही निर्धारित होगी, यही नहीं कहीं न कहीं निकट भविष्यमें दोनोंका लय हो जायगा। उर्दूके प्रेमी तथा हिंदीके हितैषी दोनों ही उस दिनको निकट लानेके लिये प्रयत्नशील हों, यही मेरा अनुरोध है।

—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

उर्दू भाषा या शैली ?

संवत् ७६६ में भारतवर्षमें एक ऐसी घटना घटी जिसने अपनी अभूतपूर्वतासे इसके एकान्त जीवनको एक-एक से चौंका दिया; यह घटना थी सिन्धमें मीरकासिमका आक्रमण। इसके कोई ३०० वर्षों बाद महमूद गज़नवीने मूर्त्तिपूजकोंको दण्ड देने और मूर्त्तिपूजा विरोधी इस्लामके सन्देशका प्रचार करनेके उद्देश्यसे भारतवर्षपर चढ़ाई की। ये लोग तो आँधीकी तरह आये और चले गये; किन्तु बादको आक्रमण करनेवाले मुहम्मद गोरीकी आकांक्षाएँ अधिक विस्तृत थीं, वह भारतवर्षमें मुसल्मानी राज्य स्थापित करना चाहता था। अनेक युद्धोंमें वीर राजपूतों-द्वारा पराजित होकर भी वह हताश नहीं हुआ; और अन्तमें, पृथ्वीराज तथा जयचन्दकी पारस्परिक फूटसे लाभ उठाकर उसने पृथ्वीराजको परास्त किया और इस देशमें मुसल्मानी राज्यकी नींव जमा ही दी।

कालकी गतिने हिन्दुओं और मुसल्मानोंको एक स्थानपर उपस्थित कर दिया, जिसके फल-स्वरूप हम हिन्दी-साहित्यके अन्तर्गत प्रवहमान आर्य्य-संस्कृतिके भक्ति-रूप मूल स्रोतमें उन अनेक उपस्रोतोंको सगम करते हुए देखते हैं, जो शान्त वातावरणके प्रस्तुत होनेपर हिन्दू मुसलमान-संस्कृतियोंके सम्मेलनसे उत्पन्न हुए थे। ये उपस्रोत दो थे—(१) अभिन्न पदोत्त सत्ता के आधारपर सञ्चालित कबीरदासकी वह खरी आलोचना-पद्धति, जो हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी त्रुटियोंको बताकर दोनोंको मानवताके समतलपर उपस्थित करती और एक समझौतेका मार्ग खोलना चाहती थी; (२) सूफी प्रेममार्गी कवियोंके प्रबन्ध-काव्यमें निहित रहस्यवाद, जो हिन्दू और मुसलमान दोनोंको विवादके क्षेत्रसे हटाकर एक आनन्दमय लोकमें पहुँचाता और प्रेम-मन्त्र-द्वारा मुग्ध करता था।

तुलसीदासने रामचरितमानसमें इस उक्त मूल स्रोतमें इन दोनों

उपस्रोतोंके सम्मेलनकी मनोहर त्रिवेणीकी सी छटा देखते हैं। तुलसीदासने जहाँ मूल प्रवाहकी रक्षा की है, वहाँ कबीरदासके तथा अन्य आलोचकोंके वर्णाश्रम-धर्म्म सम्बन्धी आक्रमणोंका यत्र तत्र उत्तर भी दिया है।

सूरदासने भी कबीरदासके निर्गुणवादका उत्तर उन सुन्दर उक्तियों-द्वारा दिया है, जो गोपियोंने ऊधोके सामने उपस्थित की हैं। किन्तु कालान्तरमें आनेवाले परिणामोंको देखते हुए ये साहित्यिक संकेत और शास्त्रार्थ हमारे जीवनके ऊपरी स्तर को ही छू रहे थे। सच बात यह है कि भारतीय संस्कृतिने भक्तिके प्रवाह-द्वारा आक्रमणकारियोंकी संस्कृतिको आत्मसात् करनेका जो प्रयत्न किया, उसमें काफी समयतक सफलता मिली, अनेक मुसल्मान कवियोंने हिन्दुओंकी प्रचलित बोलीमें बड़ी मनोहर रचनाएँ लिखीं, उदाहरणके लिए, व्रजभाषामें लिखनेवाले रसखान, अवधीमें लिखनेवाले जायसी तथा अन्य प्रेममार्गी कवियोंका नाम लिया जा सकता है। जायसी, कबीर, अमीर खुसरो तथा अन्य पूर्ववर्त्ती मुसल्मान कवियोंकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ नीचे इस उद्देश्यसे दी जाती हैं कि पाठक परवर्त्ती मुसल्मान कवियोंकी भाषा और शैलीसे उनकी तुलना करके देखें कि किस प्रकार क्रमशः प्रतिक्रियाने बलवती तथा फलवती होकर साहित्यके क्षेत्रमें भाषा, शैली तथा विषय सभी दृष्टियोंसे विदेशीपन स्वीकार करके भारतीय एकताकी समस्याको पेचीली बना दिया :—

"सय्यद अशरफ़ पीर पियारा ।
जेहि मोहिं पथ दीन्ह उजियारा ॥
लेसा हिये प्रेम कर दिया ।
उठी ज्योति भा निर्मल हिया ॥
मारग हुतो अन्धेर असूझा ।
भा उजेर सब जाना बूझा ॥
खार समुद्र पाप मोर मेला ।
बोहित धर्म कीन्ह कै चेला ॥

जाके ऐस होहिं कनहारा ।
तुरत बेग सो पावै पारा ॥
दस्तगीर गाढ़े के साथी ।
जहँ अवगाह देहिं तहँ हाथी ॥

—जायसी

× × ×

[१]

गगन की गुफा तहाँ गैब का चाँदना
उदय औ अस्त का नाव नाहीं ।
दिवस औ रैन तहाँ नेक नहिं पाइए
प्रेम परकास के सिन्ध माहीं ॥
सदा आनन्द दुख दुन्द व्यापै नहीं
परम आनन्द भरपूर देखा ।
भर्म औ भाँति तहाँ नेक आवै नहीं
कहै कबीर रस एक पेखा ॥

[२]

बहुरि हम काहे कूँ आवहिंगे
बिछुरे पञ्चतत्त की रचना तब हम रामहिं पावहिंगे ।
पृथ्वी का गुण पानी सोख्या पानी तेज मिलावहिंगे ॥
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि ये कहि गालि तवावहिंगे ।
ऐसे हम लोक-वेद के बिछुरे सुन्नहि माहिं समावहिंगे ॥
जैसे जलद तरंग तरंगिनी ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहैं कबीर स्वामि सुख सागर हंसहि हंस मिलावहिंगे ॥"

× × ×

× कबीरने फारसी अरबी के शब्दों का भी जहाँ-तहाँ मिश्रण किया है; किन्तु इसे अपवाद-स्वरूप ही मानना चाहिए ।

खड़े दरदवन्द दरवेश दर्गाह में
खैर औ मिहर मौजूद मक्का।
जिकर कर रब्ब का फिकर सरदफै कर
कहै कब्बीर इह सखुन पक्का॥

[१]

"छोड़ बदबख्त तू कह्र की नजर कूँ
खोल दिल बीच जहाँ बसत हक्का।
अजब दीदार है अजब महबूब है
करन कारन जहाँ सबद सच्चा॥
"सखी पिया को जो मैं न देखूँ
तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे
पियारे पी को हमारी बतियाँ॥

[२]

अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुड्ढा री कि सावन आया॥
अम्मा मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया॥
अम्मा मेरे मामूँ को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री कि सावन आया॥

[३]

मेरा वह यार है हमसे हमन को इन्तजारी क्या।
न पल बिछुड़े पिया हमसे न हम बिछुड़े पियारे से॥
जिन्हों की प्रीति है लागी उन्हों की बेकरारी क्या।
कबीरा इश्क मत पकड़ा गरूरी छोड़ सब दिल से॥
वह चलना राह नाजुक है हमन सर बोझ भारी क्या।

—कबीर

एक थाल मोती से भरा।
सब के सिर पर औंधा धरा॥
चारों ओर वो थाली फिरै।
मोती उससे एक न गिरै॥
आवे तो अँधियारी लावै।
जावै तो सब सुख ले जावै॥
क्या जानूँ वह कैसा है।
जैसा देखा वैसा है॥
बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली॥

[४]

"एक कहानी मैं कहूँ तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया बाँध गले में सूत।
सोभा सदा बढ़ावन हारा।
आँखिन ते छिन होत न न्यारा॥
आये फिर मेरे मनरंजन।
ए सखि साजन ना सखि अंजन॥

[५]

खुसरो रैनि सोहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भये इकरंग॥
गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैनि भई चहुँ देस॥"

—अमीर खुसरो

[६]

"जा थल कीन्हें विहार अनेकन
ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।

जा रसना सो करी यहु बातन
ता रसना सो चरित्र गुन्यौ करैं ॥
"आलम" जौन से कुंजन में करी
केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं।
नैनन में जो सदा रहते
तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं ॥

[२]

चन्द को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै,
चन्द बिन दिन छवि लागत अँध्यारी है।
"आलम" कहत आली अलि फूल हेत चलै,
काँटे सी कटीली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है।
कारो कान्ह कहति गँवारी ऐसी लागति है,
मोहिं वाकी स्यामताई लागत उँज्यारी है।
मन की अरक तहाँ रूप को विचार कहाँ,
रीझिबे को पैंड़ो तहाँ बूझ कछु न्यारी है।"

—आलम

× × ×

(४)

"मानुस हौं तो वहै रसखान
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वहै गिरि को जो
धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं वहै
कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर
राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख
नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
आँखिन सों रसखान कबै
ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम
करील के कुञ्जन ऊपर वारौं।"

—रसखान

× × ×

[१]

"ऋतु बसन्त आये बन फूला।
जोगी जती देखि रंग भूला।
पूरन काम कमान चढ़ावा।
बिरही हिये बान अस लावा।
फूलहि फूल सुर्गी गुञ्जारहिं।
लागे बाग अनार के डारहिं।
कुसुम केतकी मालति चम्पा।
भूले भँवर फिरहिं चहुँ पासा।
मैं का करउँ कहाँ अब जाऊँ।
मो कहँ नाहिं जगत महँ ठाऊँ।
टेसू फूल तो कौन टँउेरा।
लागे आग जरँ चहुँ फेरा।

[२]

तैसे धन बाउर भई,
वौरे आम लतान ।
मैं वौरी दौरी फिरऊँ,
सुनि कोयल कै तान ।"

—निसार

× × × ×

"मन दृग सों इक राति मँझारा ।
सूझि परा मोहिं सब संसारा ।
देखेउँ नीक एक फुलवारी ।
देखेउँ तहाँ पुरुष औ नारी ।
दोऊ मुख सोभा बरनि न जाई ।
चन्द सुरुज उतरे भुइँ आई ।
तपी एक देखेउँ तेहि ठाऊँ
पूछेउँ तासों तिनकर नाऊँ ।
कहाँ अहैं राजा औ रानी ।
इन्द्रावति औ कुँवर गियानी ।"

—नूरमुहम्मद

"निकसी तीर भई वैरागीं ।
धरे ध्यान सब विनवै लागीं ।
गुपुत तोहिं पावहिं का जानी ।
परगट महँ जो रहै छिपानी ।
चतुरानन पढ़ि चारौं बेदू ।
रहा खोजि पै पाव न भेदू ।
हम अंधी जेहिं आपु न सूझा ।
भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा ।

कौन सो ठाउँ जहाँ तुम नाहीं ।
हम चख जोति न देखहिं काहीं ।"

—उसमान

× × ×

[१]

"रहिमन राज सराहिये, जो ससि के अस होय ।
रवि को कहा सराहिये, जो उगै तरैयन खोय ॥

[२]

बालम अस मन मिलयउँ जस पय पानि ।
हंसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि ॥
भोरहि बोलि कोइलिया बढ़वति ताप ।
एक घरी भरि सजनी रहु चुपचाप ॥
सघन कुञ्ज अमरैया सीतल छाँहि ।
झगरति आइ कोइलिया पुनि उड़ि जाहि ॥
लहरत लहर लहरिया लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार ॥"

—रहीम

हिन्दीके हिन्दू कवियोंकी दो श्रेणियोंकी कल्पना की जा सकती है— एक तो वह जो स्वार्थसे प्रेरित होकर अपने संरक्षकोंको प्रसन्न करनेके उद्देश्य से फारसी-अरबी शब्दोंका प्रवेश अपनी रचनाओंमें कर सकती थी, दूसरी वह जो सब प्रकारके स्वार्थोंसे मुक्त होकर भी केवल साहित्यिक स्वाद वश सहज रूपसे प्रचलित हो जानेवाले फारसी, अरबी शब्दोंका प्रयोग करती थी। महात्मा तुलसीदास और महात्मा सूरदासकी गणना तो द्वितीय श्रेणीके लोगोंमें ही की जायगी । इनकी रचनाओंमें फारसी-अरबी शब्दोंके प्रयोग देखिए :—

"आवत ही हरखै नहीं देखत नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए कचन बरसै मेह॥"

× × ×

उपरोहितहिं भवन पहुँचाई।
असुर तापसहिं खबरि सुनाई॥

× × ×

बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हर्षे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

× × ×

सुर स्वारथी अनीस अलायक निठुर दया चित नाहीं

× × ×

ठौर ठौर साहिबी होत है ख्याल काल कलि केरो

× × ×

कृपासिंधु जन दीन दुआरे दाद न पावत काहे

× × ×

हौं न कबूलत बाँधि के मोल करत करेरो"

—तुलसीदास

× × ×

[१]

"जनम साहिबी करत गयौ।
काया नगर बड़ी गुन्जाइस नाहिन कछु बढ़यौ।
हरिकौ नाम दाम खोटे लौं झकि झकि डारि दयौ॥
विषया गाँव अमल कौ टोटो हँसि हँसि कै ठमयौ।
नैन अमीन अधर्मिन कैं वस जहँ को तहाँ छयौ॥
दगाबाज कुतवाल कामरिपु सरवस लूटि लयौ।
पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ धर्म सुधन लुटयौ।
चरनोदक कौं छाँड़ि सुधारस सुरापान अँचयौ॥

[२]

सॉचो सो लिखहार कहावै ।

काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै ॥
मन महतो करि कैद अपने मैं ज्ञान जहतिया लावै ।
माँडि माँडि खरिहान क्रोध को पोता भजन भरावै ॥
बट्टा काटि कसूर भरम को फरद तले लै डारै ।
निहचै एक असल पै राखै टरै न कबहूँ टारै ॥
करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै ।
दूजे करज दूरि करि दैयत नैकु न तामै आवै ॥
मुजमिल जोरै ध्यान कुल्ल को हरि सों तहँ लै राखै ।
निर्भय रूप लोभ छाँडिकै सोई बारिज राखै ॥
जमा खरच नीके करि राखै लेखा समुझि बतावै ।
सूर आपु गुजरान मुहासिब लै जबाब पहुँचावै ॥

[३]

हरि हौं ऐसो अमल कमायो ।

साबिक जमा हुती जो जोरी मिनजालिक तल ल्यायो ।
वासिल बाकी, स्याहा मुजमिल सब अधर्म की बाकी ।
चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी सरन गहूँ मैं काकी ।
मोहरिल पाँच साथ करि दीने तिनकी बड़ी विपरीति ।
जिम्मै उनके माँगे मोतैं, यह तो बड़ी अनीति ॥
पाँच पचीस साथ अगवानी सब मिलि काज बिगारे ।
सुनी तगीरो, बिसरि गयो सुधि मो तजि भये नियारे ॥
बड़ो तुम्हार बरामद हूँ को लिखि कीनो है साफ ।
सूरदास को यहै बीनती दस्तक कीजै माफ ॥"

—सूरदास

जायसी आदि कवियोंकी भाषापर ध्यान रखते हुए परवर्ती मुसल्मान कवियोंकी भाषाका नमूना देखिए :—

[१]

"गुलशन उस गुल बिन मेरी नज़रों में वीराँ हो गया।
झाड़ झाड़ औ बूटा बूटा दुश्मने जाँ हो गया॥
अश्क खूँ-आलूदः मेरे इस कदर जारी है आज।
जा बजा जाखों मे हिन्दुस्ता बदख्शाँ हो गया॥
सोरे दरिया तक मलाहत का तेरी पहुँचा है शोर।
वे नमक आगे तेरे लब के नमकदाँ हो गया॥
फैज सुहबत का तेरी हातिम अयाँ है हिन्द में।
तिफ्ले मकतब था सो आलम बीच तावाँ हो गया॥

[२]

हर सुबह उठ बुतों से मुझे राम राम है।
ज़ाहिद तेरी नमाज़ को मेरा सलाम है॥"

—हातिम

[१]

"मेरे सनम का किसी को मकाँ नहीं मालूम।
खुदा का नाम सुना है निशा नहीं मालूम॥
अखीर हो गये गफ़लत में दिन जवानी के।
बहारे उम्र हुई कब खिज़ाँ नहीं मालूम॥
मेरी तरह तो नहीं इसको इश्क का आज़ार।
यह ज़र्द रहती है क्यों जाफराँ नहीं मालूम॥
जहाँ वो कारे जहाँ से हूँ बेखबर बदमस्त।
किधर जमीं है किधर आसमाँ नहीं मालूम॥
मेरी तुम्हारी मुहब्बत है शुहरए आफ़ाक़।
किसे हकीकतो माहो किताँ नहीं मालूम॥

मिला था खिज्र का किस तरह चश्मए हैवाँ ।
हमें तो यार का अपने दहाँ नहीं मालूम ॥
छुटेंगे जीस्त के फन्दे से कौन दिन आतिश ।
जनाज़ा होगा कब अपना रवाँ नहीं मालूम ॥

[२]

बख्शे जायेंगे गुनहगारे मुहब्बत अय ज़ाहिद ।
रहमते अल्लाह से काफिर हैं जो मायूस हैं ॥"

—आतिश

"वादिए इश्क पै जो बहके नज़र जाते हैं ।
नक़दे जाँ पहली ही मंज़िल में लुटा आते हैं ॥
छा ही जाते हैं वो आँखों में बअन्दाज़े मुदाम ।
दर्द बन के वो मेरे दिल में समा जाते हैं ॥
यों जलाई थी किसी ने कभी आतिशे हमदम ।
राख सी आप जो सीने में मेरे पाते हैं ॥
लज़्ज़त अन्दोज़ है दिल दर्द से इस दर्जा नदीम ।
नालए गैर से भी अश्क उमड़ आते हैं ॥
वो निगाहे ग़लत अन्दाज़ से ग़म खानए दिल ।
कभी वीराँ कभी आबाद किये जाते हैं ॥"

—चक्काश

हम भले ही कहा करें कि जायसी, कबीर, रसखान, रहीम, ताज, आलमकी तथा इन कवियोंकी भाषा वही बोली है, जिसे हिन्दू 'भाषा' और मुसलमान 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' कहा करते थे, किन्तु पूर्ववर्ती और परवर्ती मुसलमान कवियोंकी भाषामें कुछ अन्तर अवश्य हो गया है।

उर्दूपर फारसीका रंग बेहद चढ गया, इसकी शिकायत उर्दूके प्रसिद्ध लेखक मौलाना हुसेन आज़ादको भी है। वे कहते हैं:—

"उर्दूमें फारसीका रग बहुत तेज़ीसे आया। यह रग अगर उसी क़दर आता कि जितना चेहरेपर उबटनेका रग या आँखोंमें सुर्मा, तो खुशनुमाई और बीनाई दोनोंको मुफीद होता। मगर अफसोस कि फारसीकी शिद्दतने हमार क़ूवते बयान और आँखोंको सख्त नुकसान पहुँचाया।"

इसी बातका समर्थन तारीखे अदबे उर्दूके लेखकने भी किया है—

"इस ज़मानेमें भी वही पुरानी तरक़ीब–हिंदी अलफाज़ तर्क करनेकी–बराबर जारी रही। × × उनके एक कलम निकाल दिये जानेसे देशी ज़बानकी तरकीबोंको सख्त नुक़सान पहुँचा।"

इस प्रसगमें तारीखे अदबे उर्दूसे एक अन्य अवतरण भी यहा उद्धृत किया जाता है, जिसका शेरोसुखनके लेखकने हिंदी रूपान्तर प्रस्तुत किया है:-

"मीर, दर्दने अपने कलामसे हिन्दी शब्द निकालने शुरू किये तथा इस युगके शायरोंने सईदा, हाफ़िज़, नासिरअली, जलाल, असीर, बेदिल और तालिब वगैरह फारसी शायरोंका अनुसरण करते हुए उनके रगमें कहना शुरू किया। फारसीसे नई वहों उपमाओं, उदाहरणों और अलकारोंको भी माँग लिया। बहुतसे शब्द बहिष्कृत कर दिए। मतलब ये है कि इस दौरमें उर्दू शायरीपर फारसियतका पूरा गलबा हो गया और वह बिल्कुल ईरान-ओ-तुर्कके कालिबमें ढल गयी।"

हिंदीके आधुनिक कवियोंमें 'प्रियप्रवास' के रचयिता प० अयोध्या सिंह उपाध्यायने यदि सस्कृत-गर्भित भाषा लिखी है तो चौपदोंका निर्माण करके उर्दू शैलीका प्रवेश भी हिंदीमे किया है और अपनी उत्तरकालीन रचनाओंमें यथेष्ट सरलताका समावेश किया है। कुछ पक्तियाँ देखिए :—

"मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा॥

मैं झिझक उट्ठा हुआ बेचैन-सा
लाल होकर आँख भी दुखने लगी ।
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे ।
ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी ॥
जब किसी ढब से निकल तिनका गया
तब समझ ने यों मुझे ताने दिये ।
ऐंठता तू किसलिए इतना रहा
एक तिनका है बहुत तेरे लिए ॥"

× × ×

"आँख का आँसू ढलकता देखकर
जी तड़प कर के हमारा रह गया ।
क्या गया मोती किसी का है बिखर
या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥
ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ी
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ ।
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ी
खेलती हैं खंजनों की लड़कियाँ ॥
या जिगर पर जो फफोला था पड़ा
फूट करके वह अचानक बह गया ।
हाय ! था अरमान जो इतना बड़ा
आज वह कुछ बूँद बनकर रह गया ॥"

किन्तु अनेक कवियोंने इस ओर ढलते-ढलते उस भूमिपर पैर रखना आरम्भ कर दिया है, जहाँ आपत्ति की जा सकती है—अरबी-फारसीके [illegible] अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग आरम्भ करके उन्होंने अपनी रचनाओंको साधारण हिन्दी पाठकोंके लिए दुर्बोध बना डाला है। उदाहरणके लिए 'हरिऔध'जीकी एक कविता देखिए:—

"इफ़क़ार की मार ने ढाहा इसे
अब तो उर्दू यों न जमाना बने।
शशपंज वो रंजो मलाल ग़मो
अद्‌वार का यों न निशाना बने।
गुलज़ार में आये बहार नयी
फिर शादी खुशी का ख़ज़ाना बने।
न उजाड़ दयार रहे दिल ये
दिलदार का दौलतख़ाना बने॥

× × ×

अपने को पिरो उस ताग में दे
तसबीह वो ये इक दाना बने।
कर दे खुद को फ़ना बेखुद हो
वो शमा बने ये परवाना बने।
गुल वो तो हितैषी अनादिल ये
जो वो नावक तो ये निशाना बने।
जलवानुमा यार हो तो दिल ये
दिलदार का दौलतख़ाना बने।"

'कर्मयोगी'—सम्पादकने एक बार 'हमारी भाषाका प्रश्न' शीर्षक देकर संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग करनेवालोंको इस प्रकार फटकारा था :—

"हमारे संस्कृतके ठेकेदार साहित्यिक मँजे हुए तद्भव शब्दोंके रहते हुए भी संस्कृतके तत्सम शब्दोंके व्यवहारमें ही कल्याण समझते हैं। उनकी समझमें यह नहीं आता कि इस घातक नीतिसे ही उनकी इस वर्तमान हिन्दीके राष्ट्रभाषा' बननेमें ज्यादा दिन लगेंगे। अगर इनसे कहा जाय कि प्राकृत, अपभ्रंश या अवधी ब्रजभाषा आदिके अमर साहित्यिक तुलसी, सूर क्या संस्कृत नहीं जानते थे, फिर आप संस्कृतकी

बेतरह भरमारसे भाषाको क्यों भद्दी और दुरूह बनाते हैं; तो इसका लचर जवाब अक्सर यह मिला करता है कि भाषामें 'सजीवता' डिगनिटी' (शान) क़ायम रखनेके लिए यह जरूरी है। कोई संस्कृत-रक्षाकी दुहाई देकर ऐसा करता है। कुछ मनमें यह भी समझते हैं कि संस्कृत न भरनेसे लोग लेखककी शिक्षा-संस्कृतिको बहुत नीचे दर्जेकी समझेंगे। कुछ साहित्यिक अपनी भूलके कारण अरबी-फ़ारसी आदिसे आए हुए शब्दोंको मुसलमानोंके घरकी चीज़ समझते हैं। अतः उन्हें 'अस्पृश्य' मानते हैं। यह नासमझी या संकीर्णहृदयताकी चरम सीमा है। हमारे दुर्भाग्यसे समाजमें आज भी ऐसे पंडित और 'कर्मनिष्ठ' ब्राह्मण मौजूद हैं, जो म्लेच्छ, शूद्र, यवनके छू जानेपर नहाना या पुनः संस्कारतक कर डालना ज़रूरी समझते हैं। अब उनकी भाषापर भी वे इसी प्रकार यवनत्व, म्लेच्छत्व या शूद्रत्वका आरोप करने लगे हैं, अतः उन्हें अपनी भाषाकी शुद्ध संस्कृत पंक्तियोंमें स्थान देना उतना ही 'अब्रह्मण्य' समझते हैं, जितना कि भोजमें 'पंक्तिपावन' ब्राह्मणोंके साथ कन्धेसे कन्धा सटाकर म्लेच्छोंके बैठनेमें !"

आश्चर्य है, अरबी, फ़ारसीके तत्सम शब्दोंका प्रयोग करनेवालोंके लिए उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा ! अस्तु।

आधुनिक मुसल्मान कवियोंमें निस्सन्देह मौलाना हाली और मौलाना अकबरने ऐसी भाषा लिखी, जिसे प्रायः सर्वसाधारण समझ सकते हैं। इन कवियोंने साहित्यिक स्वादवश पूर्ववर्ती प्राचीन मुसल्मान कवियोंका पथ यथासंभव स्वीकार किया; अन्य कई कवि भी हैं जो उसी पथपर चलना चाहते हैं।

मौलाना अल्ताफ़ हुसेन हालीकी कुछ कविताएँ देखिए :—

"नौकरी ठहरी है ले दे के अब औक़ात अपनी ;
पेशा समझे थे जिसे हो गई वह ज़ात अपनी ।

अब न दिन अपना रहा और न रही रात अपनी ;
जा पड़ी ग़ैर के हाथों में हर एक बात अपनी ।
हाथ अपने दिल-ए-आज़ाद से हम धो बैठे ;
एक दौलत थी हमारी सो उसे खो बैठे ।
करते हैं क़सद तिजारत तो गिरह में नहीं दाम ;
दस्तकारी को समझते हैं कि है कार अवाम ।
नहीं हल जोतने में राहतो आराम का नाम ;
बनते फिरते हैं इसी वास्ते एक एक गुलाम ।
नज़र आती नहीं मतलब की कोई बात हमें ;
वह पड़ा नक्शा कि हर चाल में है मात हमें ।

× × ×

वर्ना दिन रात फिरें ठोकरें खाते दर दर ;
सनदें चिट्ठियाँ पर्वाने दिखाते दर दर ।
चापलूसी से दिल एक एक का लुभाते दर दर ;
ज़ायक़ा नफ्स को ज़िल्लत का चखाते दर दर ।
ताकि ज़िल्लत से बसर करने की आदत हो जाय ;
नफ्स जिस तरह बने लायक़ें ख़िदमत हो जाय ।

× × ×

इस क़दर उम्र दोरोज़ा पै न मग़रूर थे हम ;
ऐशो इशरत के तिलिस्मों से बहुत दूर थे हम ।
किसी मेहनत से मशक्कत से न माजूर थे हम ;
आप ही राज थे और आप ही मज़दूर थे हम ।
थे गुलाम आपही और आपही आक़ा अपने ;
खुद ही बीमार थे और खुद ही मसीहा अपने ।

× × ×

थक के मेहनत से जो हम भूख में खाते थे तआम;
देते थे कलए-बिरियाँ का मज़ा गन्दुम-ए-ख़ाम।
दस्तो बाज़ू की बदौलत था हमें ऐश मुदाम;
खूब कटते थे मशक्क़त में हमारे अय्याम।

× × ×

आमद-ए-मौसम-ए-गुल में था अजब लुत्फ़ हवा;
आँधियों ने किये अंजाम को तूफ़ाँ बरपा।
चश्मा नज़दीक था मम्बे से तो था ऐन सफ़ा;
जितना बढ़ता गया होता गया पानी गँदला।
मिटते मिटते असर खिदक़ो सफ़ा कुछ न रहा;
आख़िरी दौर में तलछट के सिवा कुछ न रहा।

× × ×

जिनको मन्जूर है मुश्किल को न दुश्वार करें;
चाहिए सई व मशक्कत से न वह आर करें।
हो मयस्सर जिन्हें वह ख़िदमत-ए-सरकार करें;
वर्ना मज़दूरियो मेहनत सरे बाज़ार करें।
आबरू इसमें है, शान इसमें है, इज़्ज़त इसमें;
फ़ख़ इसमें है, शरफ़ इसमें, शराफ़त इसमें।
पेशा सीखें कोई, फ़न सीखें, सनाअत सीखें;
काश्तकारी करें आइने फ़लाहत सीखें।
घर से निकलें कहीं आदाब-ए-सयाहत सीखें;
अलग़रज़ मर्द बनें जुरअतो-हिम्मत सीखें।
कहीं तसलीम करें जाके न आदाब करें;
ख़ुद वसीला बनें और अपनी मदद आप करें।

× × ×

बस ऐ नाउमेदी न यूँ दिल बुझा तू।
झलक ऐ उमेद अपनी आखिर दिखा तू॥
खुदा नाउमेदों को ढारस बँधा तू।
फ़िसुर्दा दिलों के दिल आख़िर बढ़ा तू॥
तेरे दम से मुर्दों में जानें पड़ी हैं।
जली खेतियाँ तू ने सरसब्ज़ की हैं॥
बहुत हैं अभी जिनमें ग़ैरत है बाक़ी।
दिलेरी नहीं पर हमैयत है बाक़ी॥
फ़क़ीरी में भी वू ए सरवत है वाक़ी।
तिहीदस्त हैं पर मुरौवत है बाक़ी॥
मिटे पर भी पिन्दारे हस्ती वही है।
मकाँ गर्म है आग गो बुझ गयी है॥
समझते हैं इज़्ज़त को दौलत से बेहतर।
फ़क़ीरी को ज़िल्लत की शोहरत से बेहतर॥
गली में क़नाअत को सखत से बेहतर।
उन्हें मौत है बारे मिन्नत से बेहतर॥
सर उनका नहीं दर बदर झुकने वाला।
वह खुद पस्त हैं पर निगाहें हैं वाला॥
पिघलते हैं साँचे में ढलने की ख़ातिर॥
लगाते हैं ग़ोता उछलने की ख़ातिर॥
ठहरते हैं दम ले के चलने की खातिर।
वो खाते हैं ठोकर सँभलने की ख़ातिर॥
सबब को मरज़ से समझते हैं पहले।
उलझते हैं पीछे सुलझते हैं पहले॥
न राहत तलब हैं न मोहलत तलब वह।
लगे रहते हैं काम में रोज़ो शब वह॥

नहीं लेते दम एकदम बेसबब वह।
बहुत जाग लेते हैं सोते हैं तब वह॥
वह थकते हैं औ चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया॥
खपाते हैं कोशिश में तावो तवाँ को।
घुलाते हैं मेहनत में जिस्मे रवाँ को॥
समझते नहीं इसमें जाँ अपनी जाँ को।
वह मर मर के रखते हैं ज़िंदा जहाँ को॥
बस इस तरह जीना इबादत है उनकी।
औ इस धुन में मरना शहादत है उनकी॥
बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे।
जहाँ तक हो काम आप अपने सँवारे॥
खुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि हैं आरज़ी ज़ोर कमज़ोर सारे॥
अड़े वक्त तुम दाएँ बाएँ न झाँको।
सदा अपनी गाड़ीको गर आप हाँको॥

×   ×   ×

ऐ माँओ ! बहनो ! बेटियो ! दुनिया की ज़ीनत तुमसे है।
मुल्कों की बस्ती हो तुम्हीं क़ौमों की इज्ज़त तुमसे है॥
तुम घर की हो शहज़ादियाँ शहरों की हो आबादियाँ।
ग़मगीं दिलों की शादियाँ दुख-सुख में राहत तुमसे है॥
तुम हो तो ग़ुरबत है चमन, तुम बिन वीराना है चमन।
हो देस या परदेस जीने की हलावत तुमसे है॥
नेकी की तुम तस्वीर हो, इफ़्फ़त की तुम तदबीर हो।
हो दीन की तुम पासबाँ ईमाँ सलामत तुमसे है॥

फ़ितरत तुम्हारी है हया, तीनत में है मेहरो वफ़ा।
छुट्टी में है सब्रो रज़ा, इन्साँ इबारत तुमसे है॥
मर्दों में सत्वाले थे जो सत् बैठे अपना कब के खो।
दुनिया में ऐ सतवन्तियो ले-दे के अब सत् तुमसे है॥
मूनिस हो ख़ाविन्दों की तुम ग़मख़्वार फ़र्ज़न्दों की तुम।
तुम बिन है घर वीरान सब घर भर में बरकत तुमसे है॥
तुम आस हो बीमार की, ढारस हो तुम बेकार की।
दौलत हो तुम नादार की उसरत में इशरत तुमसे है॥
आती हो अक्सर बेतलब, दुनियाँ में जब आती हो तुम।
पर मोहनी से अपनी याँ घर भर पै छा जाती हो तुम॥

× × ×

ऐ मेरे जोर और कुदरत वाले!
हिकमत और हुकूमतवाले!
मैं लौंडी तेरी दुखियारी,
दरवाजे की तेरी भिखारी॥
अपने पराये की दुतकारी।
मैके और ससुराल पै भारी॥
रो नहीं सकती तंग हूँ याँ तक।
और रोऊँ तो रोऊँ कहाँ तक?
लेटिये गर सोने के बहाने।
पाँयते कल है और न सिरहाने॥
अब कल हमको पड़ेगी मरकर।
गोर है सूनी सेज से बेहतर॥
आबादी जंगल का नमूना।
दुनिया सूनी और घर सूना॥

आठ पहर का है यह जलापा ।
काटूँगी किस तरह रँडापा ॥
थक गयी मैं दुख सहते सहते ।
आँसू थम गये बहते बहते ॥
दबी थी भूभल में चिनगारी ।
ली न किसी ने खबर हमारी ॥
वो चैत और फागुन की हवाएँ ।
वो सावन भादों की घटाएँ ॥
वो गरमी की चाँदनी रातें !
वो अरमान भरी बरसातें ॥
किससे कहूँ किस तौर से काटीं ।
खैर, कटीं जिस तौर से काटीं ॥

रही अकेली भरी सभा में ।
प्यासी रही भरी गंगा में ॥
खाया तो कुछ मज़ा न आया ।
सोई तो कुछ चैन न पाया ॥
बाप और भाई चचा भतीजे ।
सब रखती हूँ तेरे करम से ॥
पर नहीं पाती एक भी ऐसा ।
जिसको हो मेरी जान की परवा ॥
घर है इक हैरत का नमूना ।
सौ घरवाले और घर सूना ॥
इसमें शिकायत क्या है पराई ।
अपनी किस्मत की है बुराई ॥
चैन गर अपने बाँटे में आता ।
क्यों तू औरत ज़ात बनाता ?

क्यों पड़ते हम ग़ैर के पाले ।
होते क्यों औरों के हवाले ॥
मैं ही अकेली नहीं हूँ दुखिया ।
पड़ी है लाखों पर यह विपता ॥
जलीं करोड़ों इसी लपट में ।
पदमों फुकीं इसी मरघट में ॥
बालियाँ इक इक जात की लाखों ।
ब्याहियाँ इक इक रात की लाखों ॥
ब्याह से अनजान और मँगनी से ।
बने से वाक़िफ़ और न बनी से ॥
माँ से जो मुँह धुलवाती थीं ।
रो रो माँग के जो खाती थीं ॥
थपक थपक थे जिनको सुलाते ।
घुड़क घुड़क थे जिनको सुलाते ॥
जिनको न शादी की थी तमन्ना ।
और न मँगनी का था तक़ाज़ा ॥
जिनको न आपे की थी ख़बर कुछ ।
और न रँडापे की थी ख़बर कुछ ॥
भली से वाक़िफ़ थीं न बुरी से ।
बद से मतलब था न बदी से ॥
रुख़सत पाले और चौथी को ।
खेल तमाशा जानती थीं जो ॥
होश जिन्हें था रात न दिन का ।
गुड़ियों का सा ब्याह था जिनका ॥
दो दो दिन रह रह के सुहागन ।
जनम जनम को हुईं बिरागन ॥

दुल्हा ने जाना न दुल्हन को ।
दुल्हन ने न पहचाना सजन को ॥
दिल न तबीअत शौक़ न चाहत ।
मुफ़्त लगा ली ब्याह की तुहमत ॥
शर्त से पहले बाज़ी हारी ।
ब्याह हुआ और रहीं कुँवारी ॥
होश से पहले हुई हैं बेवा ।
कब पहुँचेगा पार यह खेवा ॥
इससे बचपन का है रँडापा ।
दूर पड़ा है अभी बुढ़ापा ॥
उम्र है मंजिल तक पहुँचानी ।
काटनी है भरपूर जवानी ॥
शाम के मुर्दे का है यह रोना ।
सारी रात नहीं अब सोना ॥
आयीं बिलखतीं, गयीं सिसकतीं ।
रहीं तरसतीं और फड़कतीं ॥
कोई नहीं जो ग़ौर करे अब ।
नब्ज़ पे उनकी हाथ धरे अब ॥
दुख उनका आये और पूछे ।
रोग उनका समझे और बूझे ॥
चोट न जिनके दिल से लगी हो ।
वह क्या जाने दिल की लगी को ॥
तेरे सिवा याँ ऐ मेरे मौला !
कोई रहा है और न रहेगा ॥
अब न मुझे कुछ रंज की परवा ।
और न आसाइश की तमन्ना ॥

चाहती हूँ एक तेरी मुहब्बत ।
और न रखती कोई हाजत ॥
घूँट इक ऐसा मुझको पिला दे ।
तेरे सिवा जो सब को भुला दे ॥
आये किसी का ध्यान न जी में ।
कोई रहे अरमान न जी में ॥
फ़िक्र न हो, अच्छे न बुरे की ।
तेरे सिवा धुन हो न किसी की ॥
वाँ से अकेली आयी हूँ जैसी ।
याँ से जाऊँ अकेली ही वैसी ॥
जी से निशाँ प्यारों का मिटा दूँ ।
प्यार के मुँह को आग लगा दूँ ॥
तू ही हो दिल में तू ही जबाँ पर ।
मार के जाऊँ लात जहाँ पर ॥"

मौलाना 'अकबर' एक सच्चे राष्ट्रीय कवि और बहुत सुलझे हुए विचारोंवाले सुधारक थे । उनकी कुछ रचनाएँ देखिए :—

"झगड़ा न करे मिल्लतो मजहब का कोई याँ ।
जिस राह में जो आन पड़ा ख़ुश रहे हर आँ ॥
जुन्नार गले या कि बग़ल बीच हो क़ुरआँ ।
आशिक़ तो कलन्दर है न हिन्दू न मुसल्माँ ॥
काफ़िर न कोई साहबे इस्लाम रहेगा ।
आख़िर वही अल्लाह का एक नाम रहेगा ॥

× × ×

हमसे छिन कर हो गयी बज़्मे तरक़्क़ी के सुपुर्द ।
सच कहा मिरज़ा ने अब उर्दू भी कोरट हो गयी ॥

× × ×

अक्ल ने अच्छी कही कल लाला मजलिसराय से ।
झुक के मिलना चाहिए हम सब को वाइसराय से ॥
शेर कैसा ही हो लेकिन क़ाफ़िए इसके हैं ख़ूब ।
कौन ऐसा है जो होवे मुख़्तलिफ़ इस राय से ॥

× × ×

पाकर ख़िताब नाच का भी शौक़ हो गया ।
सर हो गये तो बाल का भी शौक़ हो गया ॥

× × ×

शेख़ जी घर से न निकले और मुझसे कह दिया ।
आप बी. ए. पास हैं तो मैं भी बी. बी. पास हूँ ॥

× × ×

किसी को भी किसी से कुछ नहीं इस बाब में झगड़ा ।
करो तुम ध्यान परमेश्वर का दिल को उसका दर्शन हो ॥
मगर मुश्किल तो ये है नाम सब लेते हैं मज़हब का ।
ग़रज़ लेकिन य होती है जथा हो और भोजन हो ॥

× × ×

लुत्फ़ चाहो एक बुते नौख़ेज को राज़ी करो ।
नौकरी चाहो किसी अंग्रेज़ को राज़ी करो ॥
लीडरी चाहो तो लफ़्ज़े क़ौम है महमाँ नवाज़ ।
गप नवीसों को और अहले मेज़ को राज़ी करो ॥"

× × ×

गये विरहमन के पास लेकर
अपने झगड़े को शीया सुन्नी ।
बिगड़ के बोला वो जाओ भागो ।
मलेछ तुम भी मलेछ वो भी ॥

वढ़ी जो तकरार तो वो लेकर
उन्हें फिरंगी के पास पहुँचा ॥
वो बोला बस दूर हो यहाँ से।
कि तुम भी नेटिव हो वो भी नेटिव ॥
फ़लक ने आख़िर हरेक की सुनकर।
कहा कि तुम सब हो मस्ते ग़फलत ॥
समझ लो इसको कि तुम भी फ़ानी।
हो, वो भी फानी है ये भी फानी ॥

× × ×

हम उर्दू को अरबी क्यों न करें।
उर्दू को वो भाषा क्यों न करें ॥
झगड़े के लिए अख़बारों में
मज़मून तराशा क्यों न करें ॥
आपस में अदावत कुछ भी नहीं
लेकिन एक अखाड़ा क़ायम है ॥
जब इससे फलक का दिल बहले
हम लोग तमाशा क्यूँ न करें ॥

× × ×

मज़हब का हो क्यूँकर इल्मो अमल दिल ही नहीं भाई एक तरफ़।
किरकिट की खिलाई एक तरफ़ कालिज की पढ़ाई एक तरफ़ ॥१॥
क्या ज़ौके इबादत हो उनको जो सिस के लबों के शैदा हों!
हलवाय बहिश्ती एक तरफ़ होटल की मिठाई एक तरफ़ ॥२॥
ताऊनो तप और खटमल मच्छर सब कुछ है ये पैदा कीचड़ से।
बम्बे की रवानी एक तरफ़ और सारी सफाई एक तरफ़ ॥३॥
क्या काम चले क्या रंग जमे क्या बात बने कौन उसकी सुने।
है अकबरे बेकस एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ़ ॥४॥

फ़रयाद किये जा अय अकबर कुछ हो ही रहेगा आख़िरकार।
अल्लाह से तोबा एक तरफ़ साहब की दुहाई एक तरफ़ ॥५॥

× × ×

उन्हें शौके इबादत भी है और गाने की आदत भी।
निकलती हैं दुआयें उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर ॥ १ ॥
न थी मुतलक़ तवक्क़े बिल बना कर पेश कर दोगे।
मेरी जाँ लुट गया मैं तो तुम्हारा मेहमाँ होकर ॥ २ ॥
निकला करती है घर से ये कह कर तू तो मजनूँ है।
सता रक्खा है मुझको सास ने लैला की माँ होकर ॥ ३ ॥
रक़ीबे सिफला ख़ूँ ठहरे न मेरी आह के आगे।
भगाया मच्छरों को उनके कमरे से धुँवा होकर ॥ ४ ॥

× × ×

सर में शौक़ का सौदा देखा।
देहली को हमने भी जो देखा ॥
जो कुछ देखा अच्छा देखा।
क्या बतलाएँ क्या क्या देखा ॥ १ ॥
जमना के भी पाट को देखा।
अच्छे सुथरे घाट को देखा ॥
सब से ऊँचे लाट को देखा।
हज़रत ड्यूक कनाट को देखा ॥ २ ॥
पल्टन और रिसाले देखे।
गोरे देखे काले देखे ॥
सङ्गीन और भाले देखे।
बैण्ड बजाने वाले देखे ॥ ३ ॥
अच्छे अच्छों को भटका देखा।
भीड़ में खाते झटका देखा ॥

मुँह को अगरचे लटका देखा।
दिल दरबार से अटका देखा॥ ४ ॥
हाथी देखे भारी भरकम।
उनका चलना कम कम थम थम॥
ज़र्री झूलें नूर का आलम।
मीलों तक वो चम चम चम चम॥ ५ ॥

सुर्ख़ी सड़क पै कुटती देखी।
साँस भीड़ में घुटती देखी॥
आतिशबाज़ी छुटती देखी।
लुत्फ़ की दौलत लुटती देखी॥ ६ ॥

एक्ज़ीबीशन की शान अनोखी।
हर शय उम्दा हर शय चोखी॥
उक़्लैदस की नापी जोखी।
मन भर सोने की लागत सोखी॥ ७ ॥

की है ये बन्दिश ज़हन रसा ने।
कोई माने परवाह न माने॥
सुनते हैं हम तो ये अफ़साने।
जिसने देखा हो वो जाने॥ ८ ॥

× × ×

क्या और से मुमकिन हो तसल्ली मेरे दिल की,
जब आप ही ने कुछ न खबर ली मेरे दिल की।
मेहमान है जिस रोज़ से सीने में तेरी याद,
आबाद है उजड़ी हुई बस्ती मेरे दिल की।
या इसकी खबर भी नहीं लेते कभी अब तो,
या फ़िक्र तुम्हें रहती थी कितनी मेरे दिल की।

दिखला के झलक और भी तड़पा गये इसको,
की वह दवा आपने अच्छी मेरे दिल की।
जब कौले वफ़ा हार चुका मैं तो फिर अब क्या,
जीते हुए हैं आप तो बाज़ी मेरे दिल की।
वह तिरछी निगाहों से मुझे देख रहे हैं,
इस वक़ में हो खैर इलाही मेरे दिल की।
तसकीं के लिये रहते थे सीने पे जो हर दम,
अब है इन्हीं हाथों से खराबी मेरे दिल की।
कहना तो बहुत कुछ है मगर क्या कहूँ 'अकबर'
अफ़सोस कि सुनता नहीं कोई मेरे दिल की।
शेख़ अगर फ़ाके में खुश, हैं बरहमन बुतखाने में,
अपने अपने तौर पर हर शख्स बहलाता है दिल।
क़स्द करता हूँ जो उठने का तो फ़रमाते हैं वह,
और बैठो दो घड़ी साहब कि घबराता है दिल।
यह नहीं कहते यहीं रह जाओ अब तुम रात को,
बस इन्हीं बातों से 'अकबर' मेरा जल जाता है दिल।"

× × ×

श्रीहामिदुल्ला 'अफ़सर' का नाम राष्ट्रीयताके रंगमे रँगे हुए वर्त्तमान मुसलमान कवियोंमे उल्लेखयोग्य है। उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए:—

"हूँ महवे ज़ात इतना कि बेखुद हूँ मस्त हूँ।
अब मैं खुदा परस्त नहीं खुद परस्त हूँ॥

× × ×

हुस्नवाले देखने दे हुस्ने बेपरदा मुझे।
आ बना दे फिर बरा मूसा का चरवाहा मुझे॥
तू हो, मैं हूँ और कोई देखने वाला न हो।
हो अगर ख़लवत तो ख़लवत हो रहे मूसा न हो॥

माना वह छुपनेवाला हर दिल में छुप जायेगा ।
लेकिन ढूँढनेवाला भी ढूँढ़ेगा और पायेगा ॥
क्या होता है मुहब्बत में यह मुझको मालूम नहीं ।
जिसने आग लगायी है वह खुद आग बुझाएगा ॥
मैं तो नाम का माली हूँ फूलों का रखवाला हूँ ।
जिसने बेल उगायी है खुद परवाना चढ़ाएगा ॥
जिसने ख़िज़ाँ को भेजा है उसके पास बहार भी है ।
जिसने बाग़ उजाड़ा है वह खुद फूल खिलायेगा ॥
ज़ानू का तकिया होगा मिट्टी का बिस्तर होगा ।
घर घर जिसका चरचा है मेरे घर भी आयेगा ॥

× × ×

किससे पूछूँ इस अँधेरी रात में तेरा पता ।
आसमाँ पर चन्द तारे हैं मगर वह दूर हैं ॥
तारों का गो शुमार में आना मुहाल है ।
लेकिन किसी को नींद न आये तो क्या करें ॥
पुर है नग़मों से फ़िज़ा मह है दुनिया सारी ।
चाँदनी रात में निकला हूँ ग़ज़ल गाने को ॥
दामन रँग हुआ है सितारों के खून में ।
अब क्या कोई उमीद हो सुबहे बहार से ॥
मायूस न हो हिज्र की शब काटनेवाले ।
इन तारों में शायद कोई हम राजे सहर हो ॥
ये झूमते हुए तारे फलक पै निकले हैं ।
कि मशालें हुई रोशन शराबख़ाने की ॥
सितारों बादलों में आज झूला झूलते निकले ।
मुहैया है फलक पर भी तो कैफ़ीयत गुलिस्ताँ की ॥

वह आ रहे हैं सितारों को नींद के झोंके ।
असर किसी पै तो होता मेरे फ़िसाने का ॥
जंगल की शबे मह ऐ अफसर है महव् सुकूने दिलकश में ।
या नूर की हलकी चादर में एक हुस्न की देवी सोती है ॥

× × ×

ये दिल नवाज़ नग़में जंगल की खामुशी में ।
लरज़ा सा आ रहा है तारों की रोशनी में ॥
हम जिसको मौत समझते हैं पैग़ामे हयाते जदीद है वो ।
ये फूल चमन में जितने हैं फिर खिलने को मुरझाते हैं ॥
हयातो मौत दो कड़िया हैं एक जंजीर की अफसर ।
कोई क्या इब्तिदा समझे कोई क्या इंतिहा समझे ॥

× × ×

तुम नदी पर जाकर देखो जब नदी में नहाये चाँद ।
डुबकी लगाये ग़ोते खाये डर है डूब न जाये चाँद ॥
किरनों की एक सीढ़ी लेकर छम छम उतरा आये चाँद ।
झूले में पानी की लहरों के क्या क्या पेंग बढ़ाये चाँद ॥
हँस हँस कर नदी के अन्दर रोतों को भी हँसाये चाँद ।
जब तुम इसको पकड़ने जाओ बादल में छुप जाये चाँद ॥
फिर चुपके से निकल कर देखे और खुद को छुपाये चाँद ।
अब हाले में छुप बैठा है क्या क्या रूप दिखाये चाँद ।
चाहे जिधर को जाओ अफसर साथ तुम्हारे जाये चाँद ॥

× × ×

नीचे तीन कविताएँ दी जाती हैं, पाठक इनकी सरल भाषापर दृष्टिपात करें :—

सुन्दर सुन्दर सुन्दर ही है, रंगत गोरी या काली ।
अन्ध्र देश की सुन्दर पुत्री, काली कोयल से काली ॥
बाल भी काले घनघोर घटा ॥

होंठ वह गदरे जामुन के से, और उदाहट में लाली ।
दाँत तो उजले मोती के से ॥
बड़ी बड़ी सी आँख ग़िलाफी, पुतली भौंरा सी काली ।
खुमारी† एक मस्ताना छाया ॥
वह मनमोहिनी मक़नातीसी उसमें चमक नागिन वाली ।
आँख लड़ी और दिल को लुभाया ॥
और सरापा गदरा गदरा साँचे में ढला लचकीला ।
जोशे जवानी फटता जोबन ॥
भरा भरा सा ढला-ढला सा, वह एक-एक अंग सजीला ।
हर हर चीज़ का बाँकपन ॥
एक मौज मचलती मचलाती, चढ़ती-उतरती थर्राती ।
और गर्दन का नफीस ढलाव ॥
सीने की ज्वालामुख है, है कमर लचकती बलखाती ।
होशरुबा चढ़ाव - उतार ॥
सुन्दर सूरत सुन्दर ही है, रंगत गोरी या काली ।
फितरत‡ ने हो जिस रंग में ढाला ॥

—अजमतउल्लाखाँ

× × ×

ब्रजवासियों में श्याम बाँसुरी बजाये जा ।
मस्तियाँ उबल पड़ें
मदभरी सदाओं से,
प्रेम - रस बरस पड़े
मनचली हवाओं से,

---

† नशा । ‡ प्रकृति ।

मुसकरा रही है शाम, श्याम मुसकराये जा ।
ब्रजवासियों में श्याम बाँसुरी बजाये जा ।
गोपियों को सुध नहीं,
मस्तियों में जोश है,
राग रंग में है गर्क
रंग मयफ़रोश है।
झूमती है कामनात झूमकर झुलाये जा ।
ब्रजवासियों में श्याम बाँसुरी बजाये जा ॥
सो गई मन की हूक,
राज भाग जाग उठे,
गर्म हैं लगन के तार,
प्रेम, राग जाग उठे,
राग से जगाये जा, ख्वाब से जगाये जा ।
ब्रजवासियों में श्याम बाँसुरी बजाये जा ॥

—इहसानबिन दानिश

बाँसुरी बजाये जा
कान्हा मुरलीवाले नन्द के लाल
बाँसुरी बजाये जा
गीत में बसी हुई अदाओं से,
गीत में बसी हुई सदाओं से,
ब्रजवासियों के झोंपड़े बसाये जा
सुनाये जा सुनाये जा
कान्हा मुरलीवाले नन्द के लाल
बाँसुरी बजाये जा

बाँसुरी की लय नहीं है, आग है,
और कोई शै नहीं है, आग है,
प्रेम की यह आग चारसू लगाये जा
सुनाये जा सुनाये जा
कान्हा मुरलीवाले नन्द के लाल
बाँसुरी बजाये जा।

—अब्दुल असर हफ़ीज़, जालन्धरवी

भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें हिन्दी और उर्दू नामसे सम्बोधित होनेवाली उक्त कविताओंमें वास्तवमें कोई भाषागत भिन्नता नहीं है। ऐसी अवस्थामें मूल देशभाषाका अधिक संस्कृत-गर्भित स्वरूप अथवा अधिक अरबी-फ़ारसी गर्भित स्वरूप एक शैलीके रूपमें गृहीत होना चाहिए, न कि एक भिन्न भाषाके रूपमें। उदाहरणके लिए, 'प्रियप्रवास' मूल भाषाकी एक शैलीका प्रतिनिधि हो सकता है, न कि एक भिन्न भाषाका द्योतक; इसी प्रकार ग़ालिब और ज़ौक़की कविता मूल भाषाकी एक शैली की ही ग्राहिका समझी जानी चाहिए।

किन्तु, इसमें भी कोई विवाद नहीं हो सकता कि बात जैसी होनी चाहिए वैसी ही वह नहीं है। ऐसी अवस्थामें उन कारणोंकी खोज करनी चाहिए जो सत्यको दबाकर एक कृत्रिम परिस्थिति उत्पन्न कर रहे हैं।

श्रीहीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने हिन्दी-उर्दूके काव्यकी विशेषताओंका उल्लेख करते हुए कहा है—* "एक ही ज़मानेकी उर्दू और हिन्दी कविता दो अलग सी धारामें बहती जान पड़ती है। यह क्यों? अगर युगधर्म जैसी कोई चीज़ है, तो एक ही देश, काल और जीवनमें रहकर यह भेद क्यों?

इसकी वजह यह है कि युगधर्मके बराबर ही महत्त्व रखनेवाली एक

---

* सम्मेलन-पत्रिका कार्तिक सं० १९९६

दूसरी चीज़का असर कवितापर होता है और वह है परम्परा या संस्कृतिकी देन। हिन्दी और उर्दू कवितामें इसलिए भेद है कि उनको अनुप्राणित करनेवाली संस्कृति और परम्परा भिन्न है। रीति या परम्परा मैं बहुत बड़े अर्थमें कहता हूँ। कविताका ढंग, उसका विषय, उसके उद्देश्य, कविकी परिस्थिति और जिम्मेदारी सब उसमें आ जाते हैं। लेकिन इसकी और इससे पैदा होनेवाली विशेषताओंकी पड़ताल करनेकी यहाँ जगह नहीं है, इसलिए इसके एक ही पहलूकी ओर इशारा करके सन्तोष करना होगा, और वह है हिन्दी और उर्दूके कविके आदर्शोंका भेद। उर्दू कविताके पीछे जो संस्कृति है, उसके लिए कविता सुखका एक साधन रही है, इसलिए कमसे कम कोरे सिद्धान्तकी दृष्टिसे कविता कोई बढ़िया चीज नहीं रही, दूसरी ओर हिन्दीमें कविताका साथ हमेशा कर्त्तव्यके साथ रहा है और कविकी हमेशा सामाजिक जिम्मेदारी मानी जाती रही है इसलिए उर्दू कविताको हमेशा राजदरबारोंसे ही पनाह मिलती रही, जब कि हिन्दी कविताका साथ पहले साधु-सन्तों और सुधारकोंसे रहा। यों हिन्दीने भी ऐसे दिन देखे जब वह राजोंका मुँह जोहनेको मजबूर हुई और उर्दूने सूफियों और औलियोंका सत्संग किया; पर हम सिर्फ परम्पराकी बात कहते हैं।

यह रीति-परम्पराका फर्क अभी तक मिटा नहीं है। सोचकर देखा जाय तो मुशायरे और कवि-सम्मेलनमें यही भेद कारगर होता है। वैसे तो अब योरोपसे बोहेमियनिज्मका जो नया आदर्श हमारे बीच आया है, जिसके अनुसार आर्टिस्ट नामका जीव बिलकुल आज़ाद है, उसने दोनोंपर अपना रंग डाला है और हिन्दीके अन्दर ही दोनों तरहका झुकाव दीखता है।"

उक्त पंक्तियोंके अवलोकनसे पाठकोंको हिन्दी उर्दू काव्यस्रोतोंके मार्मिक उद्गमका कुछ परिचय मिल जायगा। किन्तु इस विषयको पूर्ण रूपसे हृदयंगम करनेके लिए उर्दूके विकासपर भी एक दृष्टि डालनी आवश्यक है।

प्रोफेसर आज़ादने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आबेहयात' में उर्दू को व्रज-भाषाकी बेटी माना है। इस मतका खंडन करते हुए पं० रामनरेश त्रिपाठी 'उर्दू कविता कौमुदी' में लिखते हैं:—

-"उर्दू कभी किसी भाषासे निकली ही नहीं। हिन्दी का ही नाम उर्दू रख लिया गया है। यदि उसका नाम उर्दू न रखकर 'मुसलमानी हिन्दी' रक्खा जाता, तो अधिक सार्थक होता। जैसे आजकल स्कूल-कालेजोंमें जो हिन्दी बोली जाती है, और वह अँग्रेजी पढ़े हुये सरकारी नौकरोंकी हिन्दी, अँग्रेजी शब्दोंसे लदी हुई होती है। पर उसका कोई अलग नाम नहीं। वैसे ही अरबी-फारसीके संज्ञा और अव्यय शब्दोंसे लदी हुई हिन्दीका अलग नाम रखनेकी आवश्यकता ही क्या थी? यदि अलग नाम पड़ ही गया, तो भी वह हिन्दीके एक रूपान्तरके सिवा बिलकुल स्वतन्त्र भाषा नहीं कही जा सकती। ज़रा ध्यान दीजिए कि उर्दू-फ़ारसी पढ़ा हुआ एक मुसलमान बोलता है :—

'मैं कलकत्तेसे चला और जुमाको सबेरेकी गाड़ीसे इलाहाबाद पहुँच गया। मरीज़को देखा, उसके जीनेकी उम्मीद नहीं।"

और उसीको एक ग्रेजुएट, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इस तरह बोलता है—

"मैं कलकटासे चला। फ्राइडेको मौर्निंग ट्रेनसे एलाहाबाद पहुँचा। पेशंटको देखा, वह होपलेस कंडीशनमें है।"

यदि उक्त मुसलमानकी भाषाका एक अलग नाम उर्दू रक्खा जायगा तो उस ग्रेजुएटकी भाषाका क्या नाम होगा? हम तो दोनोंको हिन्दी कहेंगे। कोई अधिक बाल खींचनेको कहेगा तो हम पहलीको मुसलमानी हिन्दी और दूसरीको अँग्रेज़ी हिन्दी कहेंगे। पर हिन्दीसे अलग हम उसे तबतक न मानेंगे जबतक उसकी क्रिया, कारक, लिंग और वचन भिन्न न होंगे। जब हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक है तब उर्दू अलग स्वतन्त्र भाषा कैसे कहला सकती है? हिन्दी और उर्दू में

सिर्फ इतना ही अन्तर है कि हिन्दी देवनागरी लिपिमें लिखी जाती है और उसमें संस्कृतके शब्द अधिक रहते हैं; और उर्दू फारसी लिपिमें लिखी जाती है और उसमें अरबी-फारसीके शब्दोंकी अधिकता रहती है। गुजराती भाषाके भी दो रूप हैं—एक पारसियोंकी गुजराती और दूसरी गुजरातियोंकी गुजराती। पारसियोंकी गुजरातीमें अरबी-फारसीके शब्द अधिक रहते हैं और गुजरातियोंकी गुजरातीमें संस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्द। पर दोनों रूपोंका नाम एक है। यही हिन्दीमें भी होना चाहिये। पर दुर्भाग्यसे उर्दू एक अलग ज़बान करार दी गई और हिन्दू-मुसलमानके झगड़ेका वह भी एक कारण बना दी गई।"

हमारी समझमें उर्दू नामकरणके लिए जितना उत्तरदायित्व हिन्दुओंपर है उतना औरोंपर नहीं। लोक-प्रचलित भाषा* को हिन्दू लोकभाषा या देशभाषा नामसे स्मरण करते आ रहे थे; इसी प्रकार मुसल्मान लोग लोकभाषाको ही अपनी जिह्वाके अनुरूप ढालकर 'हिन्दी',* हिन्दवी आदि कहा करते थे। क्रमशः शासक मुसल्मानोंके सम्पर्कमें आनेवाले हिन्दुओंने क्रमशः 'भाषा' को 'भाषा' न कहकर 'हिन्दी' कहना आरम्भ कर दिया; साथ ही 'हिन्दी' को उन विशेषताओंसे मुक्त रखा जो उसे

---

* १—'भाषा बद्ध करब मैं सोई।

—तुलसीदास

२—भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।

—केशवदास

* तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहि॥

—मलिक मुहम्मद जायसी

मुसल्मानोंके लिए आकर्षक बनाती थीं। ऐसी अवस्थामें अपने इष्ट संस्कारोंसे युक्त देशभाषाको मुसल्मानोंने उर्दू कहना आरम्भ किया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। लेकिन हिन्दू लेखकोंने यहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा। मुंशी सदासुखलालने सुखसागरकी भूमिकामें लिखा है:—

उर्दू भाषा करत हौं
छमिय ढिठाई मोरि।

सुखसागरकी संस्कृत शब्दोंसे भरी हुई भाषाका एक नमूना देखिए:—

"यद्यपि ऐसे विचारसे हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बातका डर नहीं। जो सत्य बात होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने या भला माने। विद्या इसी हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूपमें लय हूजिए।"

मुन्शी सदासुखलाल स्वयं ही हिन्दीकी फ़ारसी शैलीके अच्छे लेखक थे। ऐसी स्थितिमें उनका संस्कृतगर्भित हिन्दीको उर्दू कहना इसी सत्य बातकी घोषणा करना है कि मूल भाषाके निर्माणकारी अन्य अंगोंके ज्योंके त्यों बने रहते हुए केवल शब्द-भंडार-विशेषकी अधिकता भिन्न भाषाका अस्तित्व मान लेनेके लिए यथेष्ट नहीं है।

दिल्लीके आसपासकी खड़ी बोलचालकी क्रियाओंवाली देशभाषाका विकास मुसल्मानोंने अपने ढंगपर किया, इसकी चर्चा करते हुए डा० ताराचन्द लिखते हैं:—

"जब मुसल्मानोंने हिन्दुस्तानको फ़तह किया और दिल्लीको राजधानी बनाया तो *हिन्दुस्तानी** *की क़िस्मत पलटी।* दिल्लीकी

---

* "हिन्दुस्तानी कोई मनगढ़न्त भाषा नहीं है। यह वही खड़ी बोली है, जिसे मेरठ और दिल्लीके आस-पास रहनेवाले बहुत पुराने वक़्तोंसे बोलते चले आये हैं। इसके चारों तरफ़ पश्चिममें राजस्थानी, पूरबमें ब्रजभाषा और इसके आगे अवधी बघेली, जौनपुरी, मगधी आदि पाई जाती हैं।"

अनजान बोली हिन्दुस्तानके टाकियेकी ज़बानपर चढ़ी, वह उसे अपने साथ गुजरात और दक्षिण ले गये, लश्करों, बाजारों, दूसरी जगहोंमें धर्मका प्रचार और शहरका कारोबार चलने लगा तो यह राज-दरबारमें पहुँची और दक्षिणमें इसीकी धुन सुनाई पड़ने लगी। सिपाही, दूकानदार और सूफ़ी दरवेश इसमें बातचीत करने लगे। क़िस्से, कहानियाँ, ग़ज़लें, क़सीदे, मर्सिये और मज़हबी नज़में भी हिन्दुस्तानीमें लिखी जाने लगीं। चारों तरफ़ उसका डङ्का बजा तो दिल्लीवालोंको भी अपनी भूली भाषाकी सुध आई और मुग़ल बादशाहों और उनके दरबारियोंने बड़े चावसे इसकी आवभगत की। अब हिन्दुस्तानीकी दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक़्क़ी हुई, पर मुग़ल दरबारकी छायामें इसका रङ्ग बदला। बादशाह, आलिम और अमीर फ़ारसी या तुर्की बोलते थे। उनके कान हिन्दुस्तानीकी आवाज़ोंसे आश्ना न थे और उनकी ज़बानोंसे इसके लफ़्ज़ोंका ठीक-ठीक अदा होना कठिन था। उन्होंने दक्षिणमें बनी हिन्दुस्तानीकी काट-छाँट शुरू की और उसमें फ़ारसी मिलानेमें कोई कसर न छोड़ी।

जिस भाषाको हम यहाँ देशभाषा हिन्दी या उर्दू नामसे सम्बोधित कर रहे हैं, उसीको डाक्टर ताराचन्द हिन्दुस्तानी नामसे स्मरण कर रहे हैं। उक्त अवतरणको यदि पाठक ध्यानसे पढ़ेंगे तो उन्हें उस प्रश्नको हल करनेमें सहायता मिलेगी जो इस समय हमारे सामने है—अर्थात् वे

"हिन्दुस्तानी हमारे देशकी सब बोलियोंमें सबसे ज्यादा बोली और समझी जाती है। यह कहना ग़लत न होगा कि यह हिन्दुस्तानके आधे रहनेवालोंकी ज़बान है। पंजाब, राजपूताना, दिल्ली, आगरा, अवध, बिहार और महाकोशलमें तो हिन्दुस्तानी या इससे बहुत मिलती-जुलती बोलियाँ बच्चे अपनी माँसे सीखते हैं, लेकिन इन सूबोंसे बाहर हरएक बड़े शहरमें इसके बोलनेवाले मिलते हैं और इसके समझनेवालोंकी गिनती तो और भी बड़ी है।"

कारण कौन हैं जो हिन्दी-उर्दू में कोई वास्तविक भिन्नता न होते हुए भी भिन्नता उत्पन्न करते हैं।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दिल्लीके आस-पासकी बोल-चालवाली जिस भाषाने दक्षिणमें प्रचार पाया और दिल्ली दरबारकी छत्र-छायामें उन्नति-लाभ किया, उससे अपना जनताके बीचका स्वरूप नष्ट नहीं होने दिया। इस स्वरूपकी रक्षा असंघटित और क्षीण ढंग से ही सही, किन्तु निश्चित रूपसे अभंगक्रमपूर्वक बनारसीदास, जटमल, मुन्शी सदासुखलाल आदिने की। जनताके बीच पोषण प्राप्त करनेके कारण देशभाषा संस्कृतके कुछ तत्सम, कुछ तद्भव शब्दोंका भण्डार स्वीकार कर चलती रही; उधर शासकोंके वातावरणमें पलकर वह अत्यन्त परिवर्त्तित तथा जनताके लिए दुर्बोध और अग्राह्य भी हो गयी। अवसर पानेपर हिन्दू लेखकोंमें जनता द्वारा सरलतापूर्वक गृहीत स्वरूपको ही उपयोगमें लानेकी प्रवृत्ति हो सकती थी। ऐसी अवस्थामें डाक्टर ताराचन्दके निम्नलिखित कथनका अन्तिमांश सत्य नहीं है:—

"हिन्दुओंके लिए लल्लूलालजी, सदल मिश्र, बेनीनारायण वगैराको हुक्म मिला कि नसर (गद्य) की किताबें तैयार करें, उन्हें और भी ज्यादा मुश्किलका सामना करना पड़ा। अदब या साहित्यकी भाषा तो ब्रज थी; लेकिन इसमें गद्य या नसर नामके लिए ही था। क्या करते, उन्होंने यह रास्ता निकाला कि मीर अम्मन, अफ़सोस वग़ैरहकी ज़ुबानोंको अपनाया; पर इसमेंसे फ़ारसी-अरबीके लफ्ज छाँट दिये और संस्कृत और हिन्दीके रख दिये, और प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान जैसी पोथियाँ तैयार कीं।"

सच बात यह है कि लल्लूलाल और सदल मिश्रने कोई मनगढ़न्त भाषा नहीं तैयार की, बल्कि फ़ारसी और अरबीके तत्सम शब्दोंकी ओर प्रवृत्ति न रखकर उन्होंने देशकी राष्ट्रभाषाके स्वरूप-रक्षाके निमित्त दो सिद्धान्त स्थिर करके अपना कार्य्य किया—(१) संस्कृतके

तद्भव तथा प्रचलित तत्सम शब्दोंका प्रयोग किया जाय; (२) जहाँ नवीन विचारों अथवा साहित्यिक भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए आवश्यक ही हो, वहाँ संस्कृतसे ही तत्सम शब्द ग्रहण किये जायँ, क्योंकि वह इस देशकी संस्कृतकी प्रधान भाषा है और प्रस्तुत राष्ट्रभाषाकी जननी है। इस प्रकार यह द्वन्द्व अराष्ट्रीयके विरुद्ध राष्ट्रीयका है और मन्द गतिसे ही क्यों न हो, किन्तु स्थिर और निश्चित संकल्पपूर्वक आजतक चलता जा रहा है।

हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय भाषा कौन-सी बोली होगी, इस प्रश्नके उत्तरमें डाक्टर ताराचन्द लिखते हैं:—

"हिन्दुस्तानको प्रेमके रिश्तेमें बाँधनेके लिए एक बोली चाहिए थी। वह बोली कौन सी हो सकती थी ? वही जिसे, हिन्दुओंकी पुरानी राजधानी दिल्लीके रहनेवाले सदासे बोलते आये थे, जिसे मुसलमानोंने गुमनामीके पर्देसे बाहर निकाला था और जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीने उन्नीसवीं सदीके शुरूमें रिवाज़ दिया था, वही जो आज आधे हिन्दुस्तानकी जीभपर खेलती है और हमारे कानोंको सुहाती है।"

× × ×

"यह तो सब मानते हैं कि आम ज़बानकी हैसियतसे हिन्दुस्तानी ही सरकारी और दफ्तरी ज़बान होनी चाहिए; इसमें राजसभाओंके मेम्बर और सूबेके नुमाइन्दे बहस करें। इसीके ज़रिये कांगरेस और हिन्दी मजलिसोंकी बैठकोंकी कार्रवाई हो। सरकारी हुक्म और कानून छपें। आमज़बान होनेके अलावा जिन हिस्सोंमें वह बच्चोंकी माँकी ज़बान है, वहाँ इसीके ज़रिये तालीम भी हो। न सिर्फ छोटे दर्जोंमें, बल्कि ऊँचेसे ऊँचे दर्जोंमें, स्कूलों, कालेजों और युनिवर्सिटियोंमें। जिस ज़बानको इतनी गम्भीर सेवा करनी है वह बाज़ारू बोली नहीं हो सकती, वह ऊँचे अदब और गहरी विद्याओंकी भाषा होगी। मतोंके झमेलों, आपसकी नासमझियोंने जिस ज़बानके मददगारोंको दो टोलियोंमें बाँट दिया है, उन्हें मिलकर इसकी बेल मराडे चढ़ानी होगी।"

डाक्टर ताराचन्दके उक्त कथनसे हम दिल्लीके रहनेवाले सहमत हैं; जो बोली बोलते आये थे वही राष्ट्रीय भाषा हो सकती है; किन्तु इस बातको वे स्मरण रखें कि मुग़ल दरबारियोंने उसमें अरबी-फ़ारसी शब्दोंका अत्यधिक सम्मिश्रण करके उसकी जो एक नवीन शैलीका विकास कर दिया था, यदि वे उसे ही राष्ट्रीय भाषाके सिंहासनपर बिठाना चाहेंगे तो यह भारतीय राष्ट्रीयताके प्रति उनका भयंकर अपराध होगा।

राष्ट्रीय भाषाके विदेशी स्वरूपको नष्ट करनेके लिए जिन दो सिद्धान्तोंको लल्लूलाल और सदल मिश्रने अपने सामने रखा था, वे ही सिद्धान्त आज भी हिन्दी लेखकोंके सामने हैं; अर्थात् वे संस्कृतके तद्भव तथा प्रचलित तत्सम शब्दोंका ग्रहण करते हैं और नवीन विचारों और भावोंको व्यक्त करनेके लिए जब नवीन शब्दोंको लेनेकी आवश्यकता होती है तो उन्हें संस्कृतके ही भांडारसे ग्रहण करते हैं। ऐसा करनेमें वे भारतीय बहुसंख्यक जनताके हितको ही सामने रखते हैं और जहाँ वह हित अरबी, फ़ारसी अथवा अँगरेज़ीके प्रचलित शब्दोंके प्रयोगमें निहित है वहाँ कोई आपत्ति भी नहीं करते। इस बातको न समझकर डाक्टर ताराचन्दने हिन्दी लेखकोंके कल्पित कट्टरपन और कल्पित भयका चित्र निम्नलिखित अवतरणोंमें उपस्थित किया है :—

"दूसरी भूल यह है कि यह लोग तहज़ीबको अटल और अमर समझते हैं; लेकिन तवारीख हमें बताती है कि कोई सभ्यता सदा एकसी नहीं रहती। आदमियोंके विचार बराबर बदलते रहते हैं। समाजकी बनावट और उसके मेम्बरोंके आपसके रिश्ते कभी एक ढंगपर क़ायम नहीं रहते।"

× × ×

"इनके निकट लफ़्ज़ोंका सवाल सभ्यता या तहज़ीबका सवाल है। वह समझते हैं कि हिन्दू तहज़ीबके लिए संस्कृतमें डूबी हुई भाषा होनी निहायत ज़रूरी है। मेरी रायमें यह बड़ी नादानीकी बात है। इसमें पहली

भूल तो यह है कि तहज़ीबको ज़ुबान और लफ़्ज़से मिला दिया है। तहज़ीबकी असलियत भाव और विचार है। वह भाषा जिनसे आदमी अपने जीवनका अर्थ समझते हैं, जो उन्हें सुखके रास्ते और आनन्दकी मञ्ज़िलका पता देती हैं, वह विचार जिनकी चौड़ी और मज़बूत नींवपर समाजका ऊँचा महल खड़ा होता है; वे भाव और विचार वह असली सोना हैं, जिसकी साखपर लफ़्ज़ों और ज़बानोंके काग़ज़ी नोट और नुमाइशी सिक्के चलते हैं।"

× × ×

"कुछ लोगोंको ज़रूर यह डर है कि उर्दूके मेलसे एक खिचड़ी भाषा पैदा होगी जो साहित्य या अदबके लायक़ नहीं हो सकती, यह सरासर भूल है। भाषाएँ तो सभी खिचड़ी हैं। किसीमें बाहरी लफ़्ज़ ज़्यादा हैं, किसीमें कम। मिसालके तौरपर संस्कृतको लीजिए इसे बहुत शुद्ध माना जाता है। सच तो यह है, संस्कृतमें सैकड़ों उधार लफ़्ज़ भरे हुए हैं। अरबीका भी यही हाल है। इसने न जाने कितने यूनानी, फ़ारसी, इब्रानी लफ़्ज़ ले लिए और आजकल न जाने कितने फ़्रान्सीसी अँगरेज़ी लफ़्ज़ ले रही है। ब्रज और अवधीमें बहुतेरे अरबी, फ़ारसी और द्राविड़ शब्द घुसे हैं। उर्दू तो खिचड़ा है ही, हिन्दी भी कितनी भाषाओंके लफ़्ज़ोंको अपनाये बैठी है।"

× × ×

"दूसरी ज़बानोंके लफ़्ज़ोंसे कोई भाषा बिगड़ती नहीं, धनवान् होती है, बलवान् होती है। उधार लिये शब्दोंको निकाल दें तो ज़बान फीकी और कमज़ोर हो जायगी। साहित्यमें भद्दापन तभी आता है जब लिखनेवाला अनमिल बेजोड़ लफ़्ज़ोंको मिलाता है। मेल वही कानोंको अच्छा लगता है जिसमें लफ़्ज़ोंकी आवाज़ोंमें जोड़ हो।"

डाक्टर ताराचन्दके उक्त तर्क पाठकोंको किस दिशामें ले जाना चाहते हैं, इसपर थोड़ा-सा विचार कर लेना भी उपयोगी होगा। वे वास्तवमें

देशभाषाके उसी स्वरूपका प्रचार चाहते हैं जिसका संस्कार मुग़ल दरबारियों-द्वारा हुआ था; वे जनता और जनताके बीच काम करनेवाले लेखकों-द्वारा रक्षित और आवश्यकताके अनुसार विकसित तथा संशोधित देशभाषा-स्वरूपके पक्षपोषणकी कोई प्रवृत्ति नहीं रखते। अस्तु।

देशभाषाकी उर्दू शैलीके समर्थक जो उसे राष्ट्रीय भाषाके पदपर आसीन करना चाहते हैं, कितने अराष्ट्रीय हैं, यह निम्नलिखित पंक्तियोंसे स्पष्ट है:—

"मेरा हाल वहरे खुदा देखिए।
ज़रा मेरा नक्शोनुमा देखिए॥
मैं शाहों की गोदी में पाली हुई।
मेरी हाय यों पायमाली हुई॥
निकाले जवाँ फिरती हूँ बावली।
खुदाया मैं दिल्ली की थी लाड़ली॥
अदाएँ बला की सितम का जमाल।
वह सजधज क़यामत वह आफ़त की चाल॥
मेरे इश्क का लोग भरते थे दम।
नहीं झूठ कहती खुदा की क़सम॥
यह आफ़त लड़कपन में आने को थी।
जवानी अभी सिर उठाने को थी॥
निकाले थे कुछ कुछ अभी हाथ पाँव।
चमक फैलती जाती है गाँव गाँव॥
कि ग़ैवी तमाचे से मुँह फिर गया।
महे चारदह अब्र में में घिर गया॥
मेरी गुफ्तगू और हिन्दी के फर्क।
यह शोला फिसानी यह दरियाय बर्फ॥
इस अन्दाज़ से दिल हुआ लोट पोट।
दुलाई में अतलस के गाढ़े की गोट॥

खुदाया न क्यों मुझ को मौत आ गयी।
कहाँ से मेरे सर ये सौत आ गयी॥
न झूमर न छपका न बाले रहे।
न गेसू मेरे काले काले रहे॥
न अतलस का पाजामा कलियों भरा।
दुपट्टा गुलाबी मेरा क्या हुआ॥
न सुरमा न मिस्सी न मेहँदी का रंग।
अजब तेरी कुदरत अजब तेरा ढंग॥
न बेले का बद्धी न अब हार है।
न गुगुरू गले में तरहदार है॥
न झाँझों की झनझन कड़ों का न शोर।
दुपट्टे की खसकन न मुहरम का जोर॥
वह बाँकी अदाएँ वह तिरछी चलन।
फिफर्रूँ हुआ हो गया सब हरन॥
बस अब क्या रहा क्या रहा क्या रहा।
फक़त एकदम आता जाता रहा॥
यह सौदा बहुत हमको महँगा दिया॥
अँगोछे का अब तुम फबन देखना।
खुली धोतियों का चलन देखना॥
ये सेंदुर बालों में फैसी छुटी।
किसी पार्क में या कि सुर्खी कुटी॥

निम्नलिखित पंक्तियोंमें स्व० श्रीबालमुकुन्द गुप्तने देशभाषाके राष्ट्रीय स्वरूपका पक्ष प्रस्तुत करते हुए उक्त पंक्तियोंका जो उत्तर दिया है, वह भी अवलोकन करने योग्य है :—

"न घबरी बहुत जी में घबराइए।
सँभलिए ज़रा होश में आइए॥

कहो क्या यही तुम पै उफ़्ताद है।
सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है।
किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या।
सुनूँ हाल मैं भी तो उसका जरा॥
न उठती में यों मौत का नाम लो।
कहाँ सौत मत सौत का नाम लो॥
बहुत तुम पै हैं मरनेवाले यहाँ।
तुम्हारी है मरने की बारी कहाँ?
बहुत बहकी बहकी न बातें करो।
न साये से तुम आप अपने डरो॥
ज़रा मुँह पै पानी के छींटे लगाव।
यह सब रातभर की खुमारी मिटाव॥
तुम्हारी ही है हिन्द में सब को चाह।
तुम्हारे ही हाथों है सबका निवाह॥
तुम्हारा ही सब आज भरते हैं दम।
यह सच है तुम्हारे ही सिर की कसम॥
तुम्हारी ही ख़ातिर हैं छत्तीस भोग।
कि लट्टू हैं तुम पै ज़माने के लोग॥
जो हैं चाहते उनसे रीझो रिझाव।
कोई कुछ जो वैसी कहे तो सुनाव॥
वही पहनो जो कुछ हो तुमको पसन्द।
कसो और भी चुस्त महरम के बन्द॥
करो और कलियों का पाजामा चुस्त।
यह धानी दुपट्टा यह नकसक दुरुस्त॥
यह दाँतों में मिस्सी घड़ी पर घड़ी।
रहे आँख आईने ही से लड़ी॥

कड़े को कड़े से बजाती फिरो।
यह बाँकी अदाएँ दिखाती फिरो॥
मगर इतना जी में रखो अपने ध्यान।
यह बाजारी पोशाक है मेरी जान॥
जना था तुम्हें मीन बाजार में।
पलीं शाह आलम के दरबार में॥
मिली तुमको बाज़ारी पोशाक भी।
यह थी दोगले काट की फारसी॥
यह फिर और भी कटती छँटती चली।
बजे रोज़ उसकी पलटती चली॥
यही तुमको पोशाक भाती है अब।
नहीं और कोई सुहाती है अब॥
मगर एक सुन आज मतलब की बात।
न पिछला वह दिन है न पिछली वह रात॥
किया है तलब तुमको सरकार ने।
तुम आयी हो अँगरेज़ी दरबार में॥
तो अब छोड़िए शौक़ बाज़ार का।
अदब कीजिए कुछ तो दरबार का॥
अदब की जगह है यह दरबार है।
कचहरी है यह कुछ न बाज़ार है॥
यहाँ आयी हो आँख नीची करो।
मटकने चटकने पे अब मत मरो॥
यहाँ पर न झोंकों को झनकाइए।
दुपट्टे को हरगिज़ न खिसकाइए॥
न कलियों की यों अब दिखाओ बहार।
कभी यों पे चलिए न सीना उभार॥

यह सरकार ने दी है जो नागरी।
उसे तुम न समझो निरी घाँघरी ॥
तुम्हारी यह हरगिज़ नहीं सौत है।
न हक में तुम्हारे कभी मौत है ॥
समझ लो अदब की यह पोशाक है।
हया और इज़्ज़त की यह नाक है ॥
अदब और हुरमत की चादर है यह।
चढ़ी गोद में मिस्ल मादर है यह ॥
यही आपकी माँ की पोशाक थी।
यह आज़ाद से पूछना तुम कभी ॥
इनायत है तुम पै यह सरकार की।
तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी ॥
बुराई न इसकी करो दूबदू।
बढ़ायेगी हरदम यही आबरू ॥
पुरानी भी है वह तुम्हारे ही पास।
उसे भी पहन लो रहो बेहिरास ॥
करो शुक्रिया जी से सरकार का।
कि उसने सिखायी है तुमको हया ॥"

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि स्वतंत्र भाषाकी हैसियतसे उर्दूका कोई अस्तित्व नहीं; देशभाषा के ही अभारतीय स्वरूपका नाम उर्दू रख लिया गया है और इस स्वरूपको एक शैली न कहकर पृथक् भाषाका नाम देना अन्याय करना है। पृथक् भाषाके रूपमें उर्दूको स्वीकार करनेका अर्थ है भारतीय राष्ट्रीयताके घावको चिरकालीन अस्तित्व प्रदान करना। खेद है, हमारे कुछ राष्ट्रीय कार्य्यकर्त्ता हिन्दी और उर्दूको पृथक् अस्तित्व प्रदान कर भारतीय राष्ट्रीयताके विकासमें जान-बूझकर रोड़े अटका रहे हैं। इस सम्बन्धमें इतना और

कह देना आवश्यक है कि हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू—इन नामोंके प्रति हमें किसी प्रकारकी आसक्ति-विरक्तिको अपने हृदयमें स्थान न देना चाहिए; हमें तो देशभाषाके केवल प्राकृतिक स्वरूपसे मतलब है। नामके सम्बन्धमें हम समझौता कर भी सकते हैं; किन्तु देशभाषाके सहज स्वरूपपर अस्वाभाविक विदेशी शैलीका लदना हमें सह्य न होना चाहिए। जहाँ प्रकट अथवा अप्रकट रूपसे ऐसा प्रयत्न दिखायी दे, वहाँ हमें तीव्र विरोध करना चाहिए। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि महात्मा गांधी भी सूर और तुलसीकी भाषामें प्रवाहित देशभाषा के ही पृष्ठपोषक हैं; यह और बात है कि वे उसे हिन्दुस्तानी नामसे सम्बोधित करना चाहते हैं। सच बात यह है कि यदि हम दृढ़तापूर्वक मूल तत्त्वकी रक्षा करनेका निश्चय कर लें तो मोहमें ग्रस्त होनेवाले उर्दू-प्रेमियोंको भी इसी सिद्धान्तपर आना पड़ेगा कि वही देशभाषा जिसमें हिन्दू-मुसलमान सन्तोंने अपनी बानियाँ लिखी हैं, आवश्यक परिवर्त्तनोंके साथ वर्त्तमान कालमें राष्ट्रभाषाके सिंहासन पर आरूढ़ हो सकेगी और उसे हम 'हिन्दी' कहें या हिन्दुस्तानी—इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ सकता। किन्तु एक ओर तो हम सर्वसाधारणकी भाषाको हिन्दुस्तानी कहें और दूसरी ओर उसे 'उर्दू एअमुल्ला' के रङ्गमें ले चलें—इस प्रकारकी बेईमानी न छिपी रह सकती है, न अधिक कालतक चल सकती है और न उर्दूके अस्वाभाविक जीवनको अधिक टिकाऊ बना सकती है।

उर्दू शैलीकी अभारतीयता

पिछले पृष्ठोंमें हम यह लिख आये हैं कि उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है; वह एक शैली-मात्र है, जो भारतीय राष्ट्रीयताके दुर्दिनमें देशभाषापर आरोपित हो गयी। यहाँ हम यह दिखानेकी चेष्टा करेंगे कि उर्दू शैली भारतके लिए अनेक दृष्टियोंसे अप्राकृतिक और उसके उस विकासकी विरोधिनी है जो विचारों और भावनाओंके समीकरण द्वारा ही सम्भव है। ये अप्राकृतिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) अरबी-फ़ारसीके अप्रचलित शब्द-प्रयोगकी बाढ़, जो विशेष रुचि रखनेवाले मुसल्मानों और कुछ हिन्दुओंको भले ही प्रिय हो किन्तु जिसे अधिकांश भारतीय जनता हृदयगम नहीं कर सकती।

(२) लौकिक प्रेमके आलम्बन-स्वरूप नायक नायिका-सम्बन्धी आदर्श।

(३) काव्य चमत्कारकी सृष्टिमें सहायक रूपकों, उपमाओं, आख्यानों, पक्षियों, फूलों आदिके लिए अरब और फ़ारसकी ओर दृष्टि-निक्षेप।

उक्त विशेषताओंमेंसे प्रथमके सम्बन्धमें पाठकोंको कुछ संकेत मिल चुका है; यहाँ द्वितीय और तृतीय विशेषताओंके सम्बन्धमें हम निवेदन करेंगे।

उर्दू काव्यने अपना प्रेमपात्र सम्बन्धी आदर्श भारतीय संस्कृतिसे नहीं लिया है; नीचे कुछ उर्दू कवियोंकी रचनाएँ देखकर पाठक स्वयं ही इसका निर्णय कर सकते हैं। नज़ीर कहते हैं :—

"नज़र पड़ा यक बुते परीवश,
निराली सजधज नई अदा का।
जो उम्र देखो तो दस बरस की,
पै कहर आफत ग़ज़ब खुदा का॥
जो शक्ल देखो तो भोली भाली,
जो बातें सुनिए तो मीठी मीठी।
पै दिल वो पत्थर कि सर उड़ा दे,
जो नाम लीजे कभी वफ़ा का॥
जो घर से निकले तो यह क़यामत,
कि चलते चलते क़दम क़दम पर।
किसी को ठोकर, किसी को झिड़की,
किसी को गाली निपट लड़ाका॥
य, राह चलते में चुलबुलाहट,
कि दिल कहीं है, नज़र कहीं है।
कहीं का ऊँचा कहीं का नीचा,
ख़याल किसको क़दम की जा का॥
लड़ावे आँखें वो बेहिजाबी,
कि फिर पलक से पलक न मारे।
नज़र जो नीचे करे तो गोया,
खिला सरापा चमन हया का॥
य' चंचलाहट य चुलबुलाहट,
ख़बर न तन की न तन की सुधबुध।
जो चीरा बिखरा बला से बिखरा,
न बन्द बाँधा क़बा़ क़बा का॥
गले लिपटने में यों शिताबी,
कि मिस्ल बिजली के इज़्तिराबी।

कहीं जो चमका चमक चमक कर,
　　कहीं जो लपका तो फिर झपाका ॥
न वह सँभाला किसी का सँभले,
　　न वह मनाये मने किसी के।
जो क़त्ले आशिक़ पै आके मचले,
　　तो ग़ैर का फिर न आशना का ॥
नज़ीर हट जा परे सरक जा,
　　बदल ले सूरत छिपा ले मुँह को।
जो देख लेवेगा वह सितमगर,
　　तो मार होगा अभी झड़ाका" ॥

× × ×

'दाग़' के दिल की तड़पन देखिए :—

"वो दिल ले के चुपके से चलते हुए।
यहाँ रह गये हाथ मलते हुए ॥
न इतराइए देर लगती है क्या।
ज़माने को करवट बदलते हुए ॥
मुहब्बत में नाकामियों से अखीर।
बहुत काम देखे निकलते हुए ॥
करे वादा पर वादा वो हम को क्या।
ये चकमे ये फ़िक़रे हैं चलते हुए ॥
ज़रा दाग़ के दिल पै रक्खो तो हाथ।
बहुत तुमने देखे हैं जलते हुए ॥

× × ×

क्यों कह के दिल का हाल करें हाय हाय दिल,
अच्छी कही कि हम से कहो माजराय दिल।

घबरा के बज़्मे नाज़ से आखिर वह उठ गये,
सुन सुन के हाय हाय जिगर हाय हाय दिल।
रहता है दम ख़फ़ा मेरे सीने में हर घड़ी,
रूठे हुए को हाय कहाँ तक मनाए दिल।
क्या अब भी मश्क़ जुल्म के अरमान रह गये,
एक एक दिन में तूने हजारों सताये दिल।
पाया न उस गली में दिल अपना किसी जगह,
यों हम गिरे पड़े तो बहुत ढूँढ़ लाये दिल।
कहते न थे वह सुनके बुरा मान जायँगे,
ऐ "दाग़" उनसे और कहो माजराय दिल।"

× × ×

"जहाँ लग गयी कारगर हो गयी।
मेरी आह तेरी नजर हो गयी॥
फ़रिश्ते हों मुख़बिर तो क्या कीजिए।
यहाँ बात की वाँ ख़बर हो गयी॥
शबेवस्ल ऐसी खिली चाँदनी।
वो घबरा के बोले सहर हो गयी॥
ग़मे हिज्र से दाग़ मुझको नजात।
यक़ीं था न होगी, मगर हो गयी॥
यहाँ सुबहे पीरी से पहले ही दाग़।
जवानी चिराग़े सहर हो गयी" ॥

× × ×

"कोई गिला करेगा न गुस्से की बात का।
कहना हो जो किसी को वो कह लो शबाब में॥
ऐ शेख़ जो बताये मये इश्क़ को हराम।
ऐसे के दो लगाये भिगो कर शराब में"॥

× × ×

"छूटती है आदमी से दाग़ कब हुब्बे वतन ।
गो नहीं हूँ मैं मगर हरदम मेरा दिल घर में है ॥"

× × ×

"नाम पाते हैं मुहब्बत में जो मिट जाते हैं ।
जिसके होने का गुमाँ भी न रहे दिल है वही ॥"

× × ×

"कभी मस्जिद में जो वह शोख़ परीज़ाद आया ।
फिर अल्लाह के बन्दों को खुदा याद आया ॥
दी मुअज़्ज़न ने शबेवस्ल अज़ाँ पिछली रात ।
हाय कमबख्त को किस वक्त खुदा याद आया ॥"

× × ×

माशूक की जुल्फ़ें क्या हैं कि काले नाग हैं; बेचारे नासिख़ उन्हींमें उलझे हुए हैं :—

"फिर बहार आई चमन में ज़ख्म दिल आले हुए ।
फिर मेरे दाग़े जिगर आतिश के परकाले हुए ॥
किस तरह छोड़ूँ यकायक उसकी जुल्फ़ों का ख़याल ।
एक मुद्दत से ये काले नाग हैं पाले हुए ॥
याद जब आया चमन में वह निहाले बाग़ हुस्न ।
यक क़लम लबरेज़ अश्कों से मेरे थाले हुए ॥
वह परी पैकर कहा करता है अक्सर फ़ख्र से ।
अब तो नासिख़ भी हमारे चाहनेवाले हुए॥"

× × ×

"है वो परकालए आफ़त कदे मौज़ूँ तेरा ।
दीजिए उससे जो तशबीह सनोवर जल जाय ॥"

× × ×

"इन्तहाए लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिए" ॥

× × ×

'आतिश' इसी मर्ज़ में मुब्तला हैं:—

"तड़पते हैं न रोते हैं न हम फ़रियाद करते हैं।
सनम की याद में हरदम खुदा को याद करते हैं॥
उन्हीं के इश्क में हम नालए फ़रियाद करते हैं।
इलाही देखिए किस दिन हमें वे याद करते हैं॥
शबे फुरक़त में क्या क्या साँप लहराते हैं सीने पर।
तुम्हारी काकुले पेचाँ को जब हम याद करते हैं॥
नया यह जज़्बए दिल थी नई तासीर उल्फ़त से।
हमें वह भूल बैठे हैं जिन्हें हम याद करते हैं॥"

'मोमिन' साहब फ़रमाते हैं :—

"अगर ग़फ़लत से बाज़ आया जफ़ा की।
तलाफ़ी की भी ज़ालिम ने तो क्या की॥
मुझे उम्मीद थी मेहरो वफ़ा की।
भले ज़ालिम ने जब देखो दग़ा की॥
अभी इस राह से कोई गया है।
कहे देती है शोख़ी नक़्शे पा की॥
सबा ने उसके कूचे से उड़ाकर।
खुदा जाने हमारी ख़ाक क्या की॥
न कुछ तेज़ी चली बादे सबा की।
बिगड़ने पर भी ज़ुल्फ़ उसकी बना की॥
विसाले यार से दूना हुआ इश्क़।
मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की॥

मरीजे इश्क़ यह अच्छा न होगा।
तबीबों ने बहुत इसकी दवा की॥
लगी ठोकर जो पाये दिलरुबा की।
महीनों तक मेरी तुरबत हिला की॥
न आया चैन यक दम वस्ल में भी।
घटा की रात औ हसरत बढ़ा की॥
हमारे आइने दिल को न छेड़ो।
कसम तुमको बुतो अपने खुदा की॥
नहाने में जो अब्रे जुल्फ़ टपका।
उलझ न कान से बिजली गिराका" ॥

× × ×

"उम्र सारी तो कटी इश्क़े बुताँ में मोमिन।
आख़िरी वक्त में क्या ख़ाक मुसल्माँ होंगे॥"

× × ×

'कुर्बाँ' और 'हसन' भी अपने प्रेमपात्रकी जुल्फों में ही गिरफ्तार हैं :—

"खा पेचो ताब मुझको डसें अब व कालियाँ।
जालिम इसीलिए तैने जुल्फें थीं पालियाँ॥
तनहा न दुर को देख के गिरते हैं अश्के चश्म।
सूराख़ दिल में करती हैं कानों की बालियाँ॥
देखा कि यह तो छोड़ना मुमकिन नहीं मुझे।
चलने लगा वह शोख़ मेरा तब य' चालियाँ॥
हर बात बीच रूठना हरदम में ना खुशी।
हर आन दूखना मुझे हर वक्त गालियाँ॥
ईजा हर एक तरह से देना ग़रज मुझे।
कुछ बस न चल सका तो यह तरहें निकालियाँ॥

हमने शबे फ़िराक़ में सुनता है ऐ फ़ुग़ाँ।
क्या ख़ाक सो के हसरतें दिल की निकालियाँ॥
यह था ख़याल ख्वाब में हैगा य, रोज़ वस्ल।
आँखें जो खुल गयीं वही रातें हैं कालियाँ॥"

—फ़ुग़ाँ

× × ×

"वह जब तक कि ज़ुल्फ़ें सँवारा किया।
खड़ा उस पै मैं जान वारा किया॥
अभी दिल को लेकर गया मेरे आह!
वह चलता रहा मैं पुकारा किया॥
क़िमारे मुहब्बत में बाज़ी सदा।
वह जीता किया औ मैं हारा किया॥
किया क़त्ल औ जान बख़्शी भी की।
हसन इसने एहसाँ दुबारा किया॥"

—हसन

× × ×

ज़ौक साहब इसी रंगमें लिखते हैं :—

"मरते हैं तेरे प्यार से हम और ज़ियादा।
तू लुत्फ़ में करता है सितम औ ज़ियादा॥
सर कटके सर अफराज़ हैं हम और ज़ियादा।
जूँ शाख़ बढ़े हो के क़लम और ज़ियादा॥
वह दिल को चुरा कर लगे जब आँख चुराने।
यारों का गया उन पै भरम और ज़ियादा॥
लेते हैं समर शाख़े समर वर को झुकाकर।
झुकते हैं सख़ी वक़्ते करम और ज़ियादा॥

जो कुज्जे क़नाअत में हैं तक़दीर पै शाकिर।
है ज़ौक़ बराबर उन्हें कम और ज़ियादा॥"

× × ×

"कब हक़ परस्त ज़ाहिदे जन्नत परस्त है।
हूरों पै मर रहा है य' शहवत परस्त है॥"

× × ×

उक्त पंक्तियोंके काव्यके संबंधमें हमें कुछ नहीं कहना है, केवल उनके प्रेमपात्र-सम्बन्धी आदर्शको हृदयंगम करानेके लिए ये उद्धृत की गयी हैं और केवल इस दृष्टिसे यहाँ इनपर विचार होना चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि इनमें इश्क़ हक़ीक़ी अर्थात् अलौकिक प्रेमकी तलाशके लिए कोई गुंजाइश नहीं है, साथ ही इश्क मजाजी अर्थात् लौकिक प्रेमकी दृष्टिसे भी इनका प्रवाह एक अप्राकृतिक सौन्दर्यको ग्रहण करनेकी ओर है। भारतीय साहित्यने लौकिक और अलौकिक दोनों ही प्रकारके प्रेम और सौन्दर्यकी जो व्याख्या की है, उसकी तुलना में उर्दू कवियोंका उक्त प्रयत्न अस्वस्थ मस्तिष्कका अरुचिकारक चमत्कार ही माना जायगा। जो हो, भारतीय साहित्य इस विदेशी तत्त्वको ग्रहण करके विकासकी ओर नहीं, अधःपतन की ही ओर अग्रसर होगा।

द्वितीय विशेषताके सम्बन्धमें इन थोड़ेसे शब्दोंके अनन्तर अब हम उर्दू काव्यकी तृतीय विशेषताका यहाँ उल्लेख करेंगे और यह देखनेकी चेष्टा करेंगे कि भारतीय साहित्य उसे भी किस सीमातक अपना सकता है।

तृतीय विशेषतामें निम्नलिखित बातोंका समावेश हो सकता है:—

(१) विदेशी छन्दोंका प्रयोग।

(२) आख्यानोंका प्रयोग और जीवनके निषेधात्मक तत्त्वकी अभिव्यक्तिके लिए 'शैतान'के उपयोगके रूपमें विदेशी दर्शनका आरोप।

(३ विदेशी फूलों, पक्षियों आदिका उपयोग।

(४) ब्राह्मण और मूर्तिकी व्याख्या।

पिछले पृष्ठोंमें हम यह देख चुके हैं कि पूर्ववर्त्ती मुसलमान कवियोंने कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई आदि देशी छन्दों से ही काम लिया, जहाँ तक आख्यानों आदिका सम्बन्ध है, उन्होंने भारतीय जनतामें प्रचलित सामग्री का * ही प्रयोग किया।

किन्तु देशभाषामें अरबी-फारसी शब्दोंका मिश्रण करनेके अनन्तर परवर्त्ती मुसलमान कवियोंने देशी छन्दोंका परित्याग करके अरबी फारसी छन्दोंका व्यवहार प्रचलित किया। इन छन्दोंमें कोई विशेष सुविधा हो, सो बात नहीं; हाँ इनके कारण अरबी फारसीके अप्रचलित शब्दोंके प्रयोग में और भी अधिकता हुई, क्योंकि प्रायः छन्दोंका प्रवाह भी भाषाके स्वरूपपर प्रभाव डाला करता है। एक बात और हुई; शासित जनताको असभ्य, असंस्कृत, ग्रामीणके रूपमें अप्रसिद्ध करने तथा शासकोंके अंगस्वरूप बनकर अपनेको विशेष संस्कार-सम्पन्न समझनेका प्रलोभन भी परवर्त्ती मुसलमान कवियोंके सामने उपस्थित था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ पूर्ववर्त्ती मुसलमान कवियोंने भारतीय जनताके प्रति सौहार्द-भाव

---

* आख्यान—

"पारवती मन उपजा चाऊ। देखौं कुँवर केर सतभाऊ॥
ओहि एहि बीच कि प्रेमहि पूजा। तनमन एक की मारग दूजा॥
भइ सुरूप जानहुँ अपछारा। बिहँसि कुँवर कर आँचर धारा॥
सुनहु कुँवर मोसौं एक बाता। जस मोहिं रंग न औरहि राता॥
औ विधि रूप दीन्ह है तोका। उठा सो सबद जाइ सिवलोका॥
तब हौं तो पहँ इन्द्र पठाई। गइ पदमिनि, तैं अछरी पाई॥
अब तजु जरन मरन तप जोगू। मो सौं मानु जनम भरि भोगू॥
हौं अछरी कैलास कै, जेहि सरि दूज न कोइ।
मोहिं तजि सँवरि जो ओहि मरसि, कौन लाभ तोहि होइ॥

—मलिक मुहम्मद जायसी

स्थापित करनेकी नीति अपने सामने रखी थी वहाँ परवर्ती मुसल्मान कवियोंकी नीति सोलहों आने पृथक्करणकी हो गयी।

देशी फूल आदि—

> जाही जूही तेहि फुलवारी।
> देखि रहस रहि सकी न वारी॥
> सखी साथ सब रहसहिं कूदहिं।
> औ सिंगार हार सब गूँथहिं॥
> नागमती नागेसरि नारी।
> कँवल न आछै आपनि वारी॥
> जस सेवती गुलाल चमेली।
> तैसि एक जनि बहु अकेली॥

अरबी-फारसीके विदेशी छन्दोंमें कितनी कृत्रिमता है और उनके प्रवाहके अनुकूल बननेके लिए शब्दोंको कितना रोड़-मरोड़ सहन करना पड़ता है, नीचेकी पंक्तियोंमें रेखाङ्कित स्थलोंपर पाठक देखें :—

> "चोट दिल को जो लगे आहे रसा पैदा हो।
> सदमा शीशे को जो पहुँचे तो सदा पैदा हो॥
> हम हैं बीमारे मुहब्बत य' दुआ माँगते हैं।
> मिस्ल अकसीर न दुनिया में दवा पैदा हो॥
> कह रहा है जरसे क़ल्ब ब आवाज बलन्द।
> गुम हो रहबर तो अभी राहे ख़ुदा पैदा हो॥
> मिल गया ख़ाक में पिस पिस के हसीनों पर मैं।
> क़ब्र पर बोएँ कोई चीज हिना पैदा हो॥
> अश्क थम जायँ जो फ़ुरक़त में तो आहें निकलें।
> ख़ुश्क हो जाय जो पानी तो हवा पैदा हो॥
> य कुछ असबाब के हम बन्दे हीं मुहताज नहीं।
> न ज़बाँ हो तो कहाँ नामे ख़ुदा पैदा हो॥

अभी खुरशीद जो छिप जाय तो ज़र्रात कहाँ।
तू ही पिनहाँ हो तो फिर कौन भला पैदा हो॥
क्या मुबारक है मेरा दश्ते जुनूँ ऐ 'नासिख़'।
बैज़ए बूम भी टूटे तो हुमा पैदा हो॥
आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक।
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक॥
दाम हर मौज में है हल्क़ए सदकामे निहंग।
देखें क्या गुज़रे है कतरे पै गुहर होने तक॥
आशिक़ी सब्र तलब और तमन्ना बेताब।
दिल का क्या रंग करूँ खूने जिगर होने तक॥
हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन।
ख़ाक हो जायँगे हम तुमको ख़बर होने तक॥"

आख्यानोंके लिए परवर्त्ती मुसल्मान कवि 'आदम', 'मुनकिर नक़ीर,' शैतान आदिका प्रयोग करके उसे अपने वर्ग-विशेषके लिए सीमित कर देते हैं—

"निकलना खुल्द से आदम[1] का
सुनते आये थे लेकिन।
बहुत बे आबरू होकर
तेरे कूचे से हम निकले।"

—ग़ालिब

× × ×

"मुनकिर[2] नकीर हँस पड़े
जब मैंने यह कहा,

---

१. प्रथम मानव सृष्टि

२. फ़रिश्ते जो मृत व्यक्तिके पास कब्रमें आते हैं।

दौड़ो　पुलिस　चोर
　　घुसे　हैं　मज़ार　में"।

—अज्ञात

×　　×　　×

"गया　शैतान*　मारा
　　एक सिजदा के न करने में।
अगर लाखों बरस सिजदे में
　　सर मारा तो क्या मारा॥"

—ज़ौक़

परवर्त्ती मुसल्मान कवियोंको दीपक जलाना, भारतीय कोकिल आदिकी आवाज़ सुनना पसन्द नहीं, वे 'शमा' जलाते हैं और बुलबुलका 'नाला' सुनते हैं :—

"ग़मे हस्ती का 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज।
शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक॥
गुंचा फिर लगा खिलने, आज हमने अपना दिल,
खूँ किया हुआ देखा, गुम किया हुआ पाया।

×　　×　　×

कहता है कौन नालए बुलबुल को बेअसर।
परदे में गुल के लाख जिगर चाक हो गये॥
उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब,
हम वियावाँ में हैं और घर में बहार आयी है।

---

* इस्लामकी कल्पना है कि ईश्वरकी प्रथम मानव-सृष्टि 'आदम' के सामने नतशिर होना अस्वीकार करनेके परिणामस्वरूप शैतान अभिशप्त हुआ और उसके अनन्तर उसने मनुष्यको ईश्वरके विरुद्ध बहकाते रहना ही अपना जीवन लक्ष्य बना लिया।

बुलबुल कहीं न जाइयो ज़िनहार देखना।
अपने ही वनमें फूलेगी गुलज़ार देखना॥
बुलबुल ने जिसका जलवा जाकर चमन में देखा।
दो आँख मूँद हमने वह मन ही मन में देखा॥"

राष्ट्रीय कवि चकवस्त भी उर्दू काव्य-शैलीके इस रूढ़ि-प्रयोगको तोड़ न सके :—

"शैदाये बोस्तां को सर्वो समन मुबारक।
रंगीं तबीयतों को रंगे सखुन मुबारक॥
बुलबुल को गुल मुबारक गुल को चमन मुबारक।
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक॥
गुंचे हमारे दिल के इस बाग़ में खिलेंगे।
इस ख़ाक से उठे हैं इस ख़ाक में मिलेंगे॥
है जूएशीर हमको नूरे सहर वतन का।
आँखों की रोशनी है जल्वा इस अंजुमन का॥
है रश्के महर ज़र्रः इस मंज़िले कुहन का।
तुलता है बर्गे गुल से काँटा भी इस चमन का॥
गर्दो गुबार यों का ख़िलअत है अपने तन को।
मर कर भी चाहते हैं ख़ाके वतन कफ़न को॥"

इस अन्धकारमें एक प्रकाश-रेखाकी तरह बेचारे अनीस ही 'कोयल' का नाम लेते हैं :—

'क्या हाथ था क्या तेग़ था क्या हिम्मते आली।
दम भर में नमूदार सफ़ें होती थीं ख़ाली॥
जब झूम के टालों की घटा आती थी काली।
बिजली सी चमक जाती थी शमशीर हिलाली॥
मिलता था निशां रन में सफ़ों का न परों का।
था शोर कि मेंह आज बरसता है सरों का॥

कट कट के हरेक जर्व में सर गिरते थे सर पर।
बर्छी पे न फल था न कोई फूल सिपर पर॥
फिर जाता था गर्दन पे कभी गाह जिगर पर।
मरक़ज़ की तरह था कभी दुश्मन की कमर पर॥
निकली जो कमर से तो चली खा़नए ज़ीं पर।
ज़ीं से गई मरकब में तो मरकब से ज़मीं पर॥

जोशे बहार तो आवे, फिर जोशे जुनूँ की कहत नहीं,
कूकेगी कोयल बागों में बौर आमों में आने दो!''

एक बहुत बड़ी विचित्र बात यह है कि एक ओर तो इस्लाम मूर्ति-पूजाका विरोधी है, दूसरी ओर इस्लामी सस्कृतिसे लदी हुई उर्दू शैलीका काव्य मूर्तिका पूजक है, पत्थरकी कठोरता धारण करनेवाले पाषाण-हृदय माशूकको 'बुत' मानकर 'बुतखाने' और 'बुतों'की पूजा करनेवाले 'बिरहमन' पर उसने सहानुभूति और स्नेहकी दृष्टि डाली है। जा हो, इस ओर पाठकका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित करनेकी आवश्यकता नहीं है, वास्तवमें हमारा उद्देश्य तो यहाँ केवल यह दिखानेका है कि 'बुत' और 'बिरहमन'का यह प्रयोग दोनों के ही लिए किसी रूपमें सम्मानवर्द्धक* नहीं है और इस असम्मान-भावको धारण करके उर्दू शैलीका काव्य प्रकृत देशभाषा-काव्यसे और भी दूर जा पड़ा। नीचेके कुछ पद्य देखिए :—

"बुतपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।
मातक़िद कौन है मीर ऐसी मुसल्मानी का।''

—मीर

"अफसोस है कि मुझको वह यार भूल जावे।
वह शौक़ वह मुहब्बत वह प्यार भूल जावे॥

---

* निस्सन्देह कुछ उर्दू कवियोंने ब्राह्मणको सूफियोंके रूपमें भी स्मरण किया है, किन्तु यह अपवाद-स्वरूप है।

रुस्तम तेरी आँखों के होवे अगर मुकाबिल।
आँखों को देख तेरी तलवार भूल जावे॥
आरिज के आयना प तमन्ना के सब्ज खत हैं।
तूती अगर जो देखे गुलजार भूल जावे॥
क्या शेख क्या बरहमन जब आशिकों में आवे।
तसबी करे फ़रामोश जुन्नार भूल जावे॥
यूँ आबरू बनावे दिल में हजार बातों॥
जब तेरे आगे आवे गुफ्तार भूल जावे॥"

—आबरू

"इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती।
काश बनता मैं बरहमन ही मुसल्मों के बदले॥"

—ताबाँ

प्रकृत देशभाषाकी काव्यशैलीपर अप्राकृतिक अभारतीय आरोपके अनेक अंगोंकी ओर संक्षिप्त संकेत किया जा चुका। हमारा कहना यह है कि केवल इन्हीं प्रभावोंके कारण आज यह परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है कि उर्दू शैली स्वयंको प्रकृत देशभाषासे इतनी भिन्न पा रही है; यदि ये अप्राकृतिक, अभारतीय व्यवधान हटा दिये जायँ तो, कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमारे सामने केवल वही प्रकृत देशभाषा और उसका काव्य रह जायगा जिसे न अन्य भाषाके ग्रहण करने योग्य किसी शब्दसे घृणा रह जायगी और न जिसमें प्रतिक्रियाओंके रूपमें अन्य कृत्रिम शैलियोंका विकास हो सकेगा।

———

उर्दू काव्यमें प्रेम

उर्दू काव्यमें प्रेमकी चर्चा आयी है और खूब आयी है। कुछ कवियोंकी पंक्तियाँ पाठकोंके अवलोकनार्थ यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं:—

"देखना हर सुबह तुझ रुख़सार का।
है मुताला मतलए अनवार का॥
याद करना हर घड़ी तुझ यार का।
है वज़ीफ़ा मुझ दिले बीमार का॥
आरजूए चश्मए कौसर नहीं।
तिश्नालब हूँ शरबते दीदार का॥
मसनदे गुल मंज़िले शबनम हुई।
देख रुतबा दीदए-बेदार का॥"

—वली

× × ×

"आशिक़ हुआ असीर हुआ मुबतिला हुआ।
क्या जानिए कि देखते ही दिल को क्या हुआ॥
सर भरके ज़ुल्म तूने किया मुझको वाहवा।
तक़सीर यह हुई कि तेरा आशना हुआ॥
दिल था बिसात में सो कोई इसको ले गया।
अब क्या करूँगा ऐ मेरे अल्लाह क्या हुआ॥
पाता नहीं सुराग़ करूँ किस तरफ़ तलाश।
दीवाना दिल किधर को गया आह क्या हुआ॥

सुनते ही 'सोज़' की वो ख़बरे मर्ग ख़ुश हुआ।
कहने लगा कि पिंड तो छूटा भला हुआ॥"

—सोज़

× × ×

"शबे फ़ुरक़त में रो रो कर सहर की।
हक़ीक़त क्या कहूँ मैं रात भर की॥
परेशाँ हम हुए ज़ुल्फ़ उनकी उलझी।
बला मेरे लगाई अपने सर की॥
हुए एक आन में ज़ख़्मी हज़ारों।
जिधर उस यार ने तिरछी नज़र की॥
हवा के साथ सौ सौ खा गये बल।
नज़ाक़त देखिए उनकी कमर की॥
व क़ातिल के यहाँ ख़त ले गया है।
ख़ुदाया ख़ैर कीजो नामावर की॥
अभी यकरंग होगा वस्ल मुमकिन।
अगर कुछ मेहर से उसने नज़र की॥"

—यकरंग

× × ×

"अब्रू तेरी ने मुझ पै किया वार बेतरह।
दिल में मेरे लगी है य तलवार बेतरह॥
मुमकिन नहीं कि इश्क़ के हाथों से जाँ बचे।
पैदा हुआ है मुझको य' आज़ार बेतरह॥
ग़ारत ख़ुदा करे य तेरे मुल्क हुस्न को।
है फ़ौज ख़त की गिर्द नमूदार बेतरह॥

'ताबाँ वता के यार को क्योंकर मनाइए।
अब के हुआ है मुझसे वो बेजार वेतरह॥''

—ताबाँ

× × ×

''आँखों की तरफ गोशा की दर परदा नज़र है।
कुछ यार के आने को मगर गर्म खबर है॥
शाने पै रखा हार जो फूलों का तो लचके।
क्या साथ नज़ाकत के रगे गुल सी कमर है॥
यथा खाना ख़राबी का हमें खौफ़ो खतर है।
घर है किसू गोशे में तो मकड़ी का सा घर है॥
ऐ शमा अक़ामत कद: इस बज्म को मत जान।
रोशन है तेरे चेहरे से तो गर्म सफ़र है॥
इस आशिके दीवान को मत पूछ मुईशत।
दन्दाँ बजिगर दस्त बदिल दाग़ बसर हैं॥
क्या आग की चिनगारियाँ सीने में भरी हैं।
जो आँसू मेरी आँख से गिरता है शरर हैं॥
डर जान का जिस जा है वहीं घर भी है अपना।
हम ख़ाना ख़राबों को न याँ घर है न दर है॥''

—मीर

× × ×

''इब्तिदाये इश्क़ है रोता है क्या?
आगे आगे देखिए होता है क्या?
क़ाफ़िले में सुबह के इक शोर है।
यानी ग़ाफ़िल हम चले सोता है क्या?

सब्ज़ होती ही नहीं यह सरज़मीं।
तुख्मे ख्वाहिश दिल में तू बोता है क्या?
.गैरते यूसुफ़ है यह वक्ते अज़ीज़।
मीर इसको रायगाँ खोता है क्या?

शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का॥

तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रात को।
सूराख़ पड़ गये हैं तमाम आसमान में।"

—मीर

"लग जा गले से ताब अब ऐ नाज़नी नहीं।
है, है खुदा के वास्ते मत कर नहीं नहीं॥
पहलू में क्या कहूँ जिगर व दिल का क्या है रंग।
किस रोज़ अश्क़ खूँ से तर आसतीं नहीं॥
फ़ुरसत जो पा के कहिए कभू दर्द दिल तो हाय।
वह बदगुमाँ कहे है कि हमको यक़ीं नहीं॥
उस बिन जहान कुछ नजर आता है और ही।
गोया वो आसमान नहीं वह ज़मीं नहीं॥
आँखों की राह निकले है क्या हसरतों से जी।
वह रूबरू जो अपने दमे वापसीं नहीं॥
हैरत है मुझको क्योंकि वह 'ज़ुरअत' है चैन से।
जिस बिन क़रार जी को हमारे कहीं नहीं॥
सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है? किस तरह की है? किधर है?"

——ज़ुरअत

× × ×

"मर गये यों ही तेरे हम ग़म में।
हसरतें कितनी रह गयीं हम में।।
खंजरे यार टुक तो लग ले गले।
फिर तो मर जायँगे कोई दम में।।
कौन गाड़ा है नीम विसमिल यों।
ज़लज़ला जो उठे हैं आलम में।।
जी दिया किस पतंग ने अपना।
शमा रोती है किसके मातम में।।
दूने जलने लगे ये ज़ख़्मे जिगर।
क्या नमक था ऐ सुबह मरहम में।।
क़तर ए खूँ 'हसन' तू उसको न जान।
दिल य' आया है दीदये नम में।।"

—हसन

× × ×

"कमर बाँधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाकी जो हैं तैयार बैठे हैं।।
न छेड़ ऐ नगहते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेजार बैठे हैं।।
तसव्वुर अर्श पर है और सर है पाय साक़ी पर।
ग़रज कुछ जोर धुन में इस घड़ी मयख्वार बैठे हैं।।
बसाने नक्श पाये रहरवाँ कूए तमन्ना में।
नहीं उठने की ताकत क्या करें लाचार बैठे हैं।
य' अपनी चाल है उफ़तादगी से अब कि पहरों तक।
नज़र आया जहाँ पर सायए दीवार बैठे हैं।।
कहाँ सब्रो तहम्मुल, आह नङ्गो नाम क्या शै है।
मियाँ रो पीट कर इन सब को हम यक बार बैठे हैं।।

नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो।
जहाँ पूछो, यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं॥
भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे इन्शा।
ग़नीमत है कि हम सैरत यहाँ दो चार बैठे हैं॥"

—इन्शा

× × ×

"निगाहे लुत्फ़ के करते ही रंगे अंजुमन बिगड़ा।
मुहब्बत में तेरी हमसे हरेक अहले वतन बिगड़ा॥
कुछ उसकी वजा बिगड़ी कुछ है वह पैमाँ शिकन बिगड़ा।
य' सजधज है तो देखोगे जमाने का चलन बिगड़ा॥
खुदा कहता था रोज़े हश्र में तुझसे समझ लूँगा।
तेरे तैशा से गर शीरीं का नक्शए कोहकन बिगड़ा॥
बुरी सूरत से रहना नंग है दुनिया में इंसां को।
व' गड़ जाता है खुद जीता जो कोढ़ी का बदन बिगड़ा॥
नहीं तक़सीर कुछ दरज़ी की इसमें 'मसहफ़ी' हरगिज़।
हमारी ना दुरुस्ती से बदन की पैरहन बिगड़ा॥"

—मसहफ़ी

× × ×

"आतिशे इश्क़ वह है जिसमें समुन्दर जल जाय।
एक शरर जाय जो पत्थर में तो पत्थर जल जाय॥
तन बदन फूँक दिया है ग़मे फ़ुरक़त ने मेरा।
क्या अजब है जो मेरे जिस्म से बिस्तर जल जाय॥
दोस्त कहते हैं उसे साथ दे जो आफ़त में।
शमा के जलने से परवाना न क्यों कर जल जाय॥

है व पर कालए आफ़त कदे मौजूँ तेरा।
दीजिए उससे जो तशबीह सनोवर जल जाय॥
आतशीं चेहरा है हर शाहिदे मज़मूँ नासिख़।
क्या अजब है मेरे अशआर का दफ्तर जल जाय॥

—नासिख़

× × ×

दाँत यूँ चमके हँसी में रात उस महपारा के।
मैंने जाना माहतावाँ पारा पारा हो गया॥
एक दम भी हमको जीना हिज्र में था नागवार।
पर उमीदे वस्ल में बरसों गुज़ारा हो गया॥
जौक़ इस बहरे जहाँ में किश्तिए उम्रे रवाँ।
जिस जगह पर जा लगी वह ही किनारा हो गया॥

—ज़ौक़

"हाय मुँह फेर के ज़ालिम ने किया काम तमाम।
वस्ल तो वस्ल जुदाई भी मुयस्सर न हुई॥
घट गयी वस्ल में फ़ुर्क़त में बढ़ी थी जितनी।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई॥"

—आसीं

× × ×

"थक थक के हर मुक़ाम पे दो चार रह गये।
तेरा पता न पाएँ तो लाचार क्या करें॥
जहाँ में हो ग़मो शादी बहम हमें क्या काम।
दिया है ख़ुदा ने हमें वो दिल की शाद नहीं॥
दायम पड़ा हुआ तेरे दर पर नहीं हूँ मैं।
ख़ाक ऐसी ज़िंदगी पे कि पत्थर नहीं हूँ मैं॥

क्यों गरदिशे मुदाम से घबरा न जाय दिल।
इन्सान हूँ कि फालओ सागर नहीं हूँ मैं॥
कहते हैं मुझको आप कदम बोस किस लिए।
क्या आसमान के भी बराबर नहीं हूँ मैं॥"

—गालिब

× × ×

"हवा से जुल्फ आरिज पर हिला की।
कि बदली चाँद के सिद्के हुआ की॥
सुँघाती है हमें बू गुल की लाकर।
करूँ मिन्नत न क्यों बादे सबा की।
तपे उल्फत उदू का क्या जला है।
हकीकत खुल गयी रोजे जजा की॥
मेरा दिल ले लिया बातों हि बातों।
चलो, बोलो न बस तुमने दगा की॥
मिले बोसे रकीबों को हजारों।
भला हमने तुम्हारी क्या खता की॥
न आओगे जनाजे पर अगर तुम।
रहेगी रूह मेरी तुमसे शाकी॥
अदम है या कि वह कूए सनम है।
चली आती है यों खिलकत खुदा की॥
सबा जल्दी खबर दे जाके उनको।
कि हालत देख लें मेरी निजा की॥
किसी ने गर कहा मरता है 'मोमिन'।
कहा, मैं क्या करूँ मरजी खुदा की।"

× × ×

"तुम मेरे पास होते गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥"

—मोमिन

× × ×

"कह रही है हश्र में वह आँख शरमायी हुई।
हाय कैसी इस भरी महफिल में रुसवाई हुई॥
ठोकरें खिलवाएगी वह चाल इठलायी हुई।
क्या जवानी फिरती है जोबन पै इतरायी हुई॥
कैफे मस्ती में भी रहता है य' जोबन का लिहाज।
उनको अँगड़ाई भी आती है तो शरमाई हुई॥
वस्ल में ख़ाली हुई अग़यारों से महफिल तो क्या।
शर्म भी जाये तो मैं जानूँ कि तनहाई हुई॥
गर्द उड़ी आशिक़ की तुरबत से तो झुँझलाकर कहा।
वाह सर चढ़ने लगी पावों की ठुकराई हुई॥
वस्ल की शब वाह री बेताबिए शौके विसाल।
शर्म भी नीची निगाहों में तमाशाई हुई॥
जाँ बलब हसरत में पाती है जो मुझ नाशाद को।
क्या हँसी फिरती है उन ओठों पै इतराई हुई॥
मैं तो राजे दिल छुपाऊँ पर छुपा रहने भी दे।
जान की दुश्मन य' जालिम आँख ललचाई हुई॥
शेरे गुलदस्ते में मुझ अफ़सुर्दा दिल के क्या अमीर।
दामने गुलचीं में कुछ कलियाँ हैं मुरझायी हुई॥"

—अमीर

× × ×

"रूहे रवाँ व जिस्म की सूरत मैं क्या कहूँ।
झोंका हवा का था इधर आया उधर गया॥
समझा है हक़ को अपनी ही जानिब हरेक शख़्स।
यह चाँद उसके साथ चला जो जिधर गया॥
तूफ़ाने नूह इसमें हो या शोरे हश्र हो।
होना जो कुछ है होगा जो गुज़रा गुज़र गया॥
गुज़रा जहाँ से मैं तो कहा सुन के यार ने।
क़िस्सा गया फ़साद गया दर्दे सर गया॥
काग़ज़ सियाह करते हो किसके लिए नसीम।
आया जवाब ख़त तुम्हें औ नामावर गया॥"

—नसीम

× × ×

"पूरी मेंहदी भी लगानी नहीं आती अब तक,
क्यों कर आया तुझे ग़ैरों से लगाना दिल का।
निगाहे शर्म को बेताब किया, काम किया,
रंग लाया तेरी आँखों में समाना दिल का।
हूर की शक्ल हो तुम, नूर के पुतले हो तुम,
और इस पर तुम्हें आता है जलाना दिल का।
बेदिली का जो कहा हाल तो फ़रमाते हैं,
कर लिया तूने कहीं और ठिकाना दिल का।
बाद मुद्दत के यह ऐ 'दाग़' समझ में आया,
वही दाना है, कहा जिसने न माना दिल का।"

× × ×

"बुताने माहवश उजड़ी हुई मंज़िल में रहते हैं,
कि जिसकी जान जाती है उसी के दिल में रहते हैं।

हजारों हसरतें वह हैं कि रोके से नहीं रुकतीं,
बहुत अरमान ऐसे हैं कि दिल के दिल में रहते हैं।
खुदा रक्खे मुहब्बत ने किए आबाद दोनों घर,
मैं उनके दिल में रहता हूँ, वह मेरे दिल में रहते हैं।
कोई नामो निशां पूछे तो ऐ क़ासिद बता देना,
तख़ल्लुस "दाग़" है और आशिक़ों के दिल में रहते हैं।"

× × ×

'क़रीब है यार रोजे महशर छिपेगा कुश्तों का खून क्योंकर।
जो चुप रहेगी जबाने खंजर लहू पुकारेगा आस्तीं का॥"

—दाग़

× × ×

"मुझे पीत का यहाँ कोई फल न मिला,
मेरे जी को ये आग जला सी गयी।
मुझे ऐश यहाँ कोई पल न मिला,
मेरे तन को ये आग जला सी गयी।
मेरा एक जगह जो पयाम लगा,
मेरे दिल से तड़फ के ये निकली दुआ।
नहीं चाह है दिल में तो ब्याह क्या,
या खुदा तू मुझे यों ही जग से उठा।
मुझे चाह ने खा लिया घुन की तरह,
मेरी जान की कल सी बिगड़ ही गयी।
मेरा जिस्म भी बन गया बन की तरह,
यों ही बिस्तरे मर्ग पे पड़ ही गयी।
मुझे जीते जी पीत का फल ये मिला।
मेरे जी को ये आग जला ही गयी।

मुझे प्यार की रीत का फल ये मिला,
मेरे तन को ये आग जला ही गयी।"

—अज़मतउल्लाख़ाँ

"किस कयामत की कशिश यह जज़्बये कामिल में है,
तीर उनके हाथ में, पैकां हमारे दिल में है।
एक तलातुम सा तो बरपा सीनये बिस्मिल में है;
अब न जाने तू है खुद या दर्द तेरा दिल में है।
इश्क का हर रंग पिनहाँ मेरी आबो गिल में है,
कैस मेरे सीने में, फ़रहाद मेरे दिल में है।
क्या यह एजाजे मोहब्बत नावके कातिल में है,
यानी वह भी दिल है, जो कतरा लहू का दिल में है।
अल्ला अल्ला यह मेरी मशके तसव्वुर का कमाल,
मैं हूँ इस महफिल मे, और महफिल की महफिल दिलमें है।
इश्क में गुम गश्त गीये शौक़ रास आई मुझे,
थी जो मेरे दिल में हसरत, अब वह उनके दिल में है।
सौ बहारें उस पे सदके, लाख गुल उस पर निसार,
वह लहू का एक कतरा जो हमारे दिल में है।
हर तड़प के साथ आ जाती है मुझमें ताजा रूह,
शुक्र है, इतना असर तो हजतराबे दिल में है।"

× × ×

"कुछ ऐसी जोश पर अबके यह फ़स्ले अश्कबार आयी।
कफ़स में टूट कर सारे गुलिस्तां की बहार आयी॥
कफ़स का और यकायक इस तरद्दुदियत में आ जाना।
मगर मालूम होता है कि गुलशन में बहार आयी॥"

× × ×

"भरे हुए हैं निगाहों में हुस्न के जलवे,
यह क्या मजाल जहाँ मैं हूँ और वहार न हो"।

—जिगर मुरादाबादी

यह घर हाजिर हैं क्यों गैरों को उस मुशकिल में तुम रक्खो,
निकालो अपने तरकश से हमारे दिल में तुम रक्खो।
अभी यह जाँचता हूँ मैं जफ़ा क्या है वफ़ा क्या है,
तुम्हें दिल दूँगा इतमीनान अपने दिल में तुम रक्खो।
मुझे इजहारे ग़म से इस तरह उस शोख़ ने रोका,
यह दिल का राज़ है दिल में छुपाओ दिल में तुम रक्खो।
यह मिट जायेगा खुद मिट कर सफ़ाई अपनी कर लेगा,
मेरे दिल की तरफ से क्यों कुदूरत दिल में तुम रक्खो।
वहुत अच्छी यही तदवीर है रफये कुदूरत की,
न अपने दिल में हम रक्खें न अपने दिल में तुम रक्खो।
मोहब्बत के लिये हालत नहीं जिक्रे मुहब्बत की,
ज़ुबाँ से क्यों निकालो इसको अपने दिल में तुम रक्खो।
अगर किस्मत है बावर तो वह दिन भी आये जाते हैं,
अदावत की जगह मेरी मोहब्बत दिल में तुम रक्खो।
तुम्हें दिल दे रहा हूँ मैं तो मतलब क्या है और इसका,
यह मतलब है कि मेरी याद अपने दिल में तुम रक्खो।
जरूरत ऐसे कैदी के लिये क्या कैदखाने की,
गिरफ्तारे मोहब्बत को वस अपने दिल में तुम रक्खो।
और क्या जाने कोई दर्दे मोहब्बत का मजा,
दिल तुझे जिसने दिया, इसको उसीके दिल से पूछ।
दिल मेरा सब कुछ वताने के लिए मौजूद है,
पूछना क्या चाहिए, तुझको यह अपने दिल से पूछ।

पहले मेरा हाल सुन, फिर सुनके मेरा हाल देख,
देख कर फिर ग़ौर कर, फिर ग़ौर करके दिल से पूछ।
इस तरह शायद बता दे यह कुछ अपना राजे इश्क़,
बैठ कर पहलू में दिल का हाल मेरे दिल से पूछ।
हाय यह उठती जवानी, उफ़ यह आग़ाजे शबाब,
देख आँखों से मेरी, अपने को मेरे दिल से पूछ।

× × ×

यह इज़्तिरावे शौक तो बुलबुल का देखिए।
वह चाहती है गोद में ले लूँ बहार को॥

× × ×

क्या सजीली है रसीली है निराली होली।
नाज़ खुद कहता है. नाज़ों की है पाली होली॥
बस गया दीदये पुर शौक़ में जल्वा उसका।
दिल में घर कर गयी दिल लूटने वाली होली॥

× × ×

"आरज़ू यह है, कि वह पूछें कभी है क्या मिलाप?
और मैं मिलकर बताऊँ, नाम है इसका मिलाप!
चार दिन क़ायम नहीं रहता, कभी उनका मिलाप!
इस तरफ़ होगी लड़ाई, उस तरफ होगा मिलाप!
क्या लगावट, क्या इनायत, क्या मुहब्बत, क्या मिलाप!
दिल नहीं मिलता तो आपस में नहीं होता मिलाप!
वह अभी दमभर में नाखुश, वह अभी दमभर में खुश।
हमने देखा ही नहीं, ऐसा निफ़ाक़, ऐसा मिलाप!!
यों दिखाने के लिए, वह मेहरबाँ हों भी तो क्या!
जब न दिल से दिल मिले, किस काम का ऐसा मिलाप!!
खिंच गये, तो खिंच गए, वह मिल गए, तो मिल गए!
वाह यह अच्छी है रंजिश! वाह यह अच्छा मिलाप!!

तुमको रंजिश मुझसे है, तुमको अदावत मुझसे है;
यह दिखाने की हैं बातें, यह दिखाने का मिलाप !
अब यह दुनियाँ में निफ़ाके बाहमी का ज़ोर है !
एक से एक पूछता है, नाम है किसका मिलाप ?
अब न बाकी रह गया उनसे मेरा कुछ वास्ता ;
क्या लड़ाई, क्या सफ़ाई, क्या जुदाई, क्या मिलाप !
'नूह' पढ़कर तुमने क्या इस शोख़ पर दम कर दिया !
चार दिन में हो गया, ऐसा मिलाप, इतना मिलाप !!"

—नूह नारवी

"मेरे रहते और को इतना सताया जायेगा,
ये तो मुझसे देखती आँखों न देखा जायगा !
घाव मारा किसने तिरछी चितवनों से देखकर,
अब तो जब तक घाव है, कोई तड़फता जायेगा।
सोनेवाले आँख मलते उट्ठे कच्ची नींद से,
रोनेवाले रात के कब तक तू रोता जायेगा ?
हाँ वही, जिनसे चला जाता नहीं सीधे सुभाव,
हाँ, उन्हीं की चाल से तो कोई सिटता जायेगा।
कुछ कुछ उसकी मुस्कुराहट देखकर मुझको उदास,
रूठकर भी अब तो उस पर प्यार आता जायेगा।
यों किसी पर आज वे छुरियाँ चलाते जायेंगे,
वार होते जायेंगे, कोई तड़फता जायेगा।
सब मुझी को कहते हैं, क्या उसकी मत मारी गई,
देखकर उन अँखड़ियों को किससे सँभला जायेगा।
झुट-पुटे से कुछ चमक-सी भी है दुखते घाव में,
रात भर यों ही दिआ ये झिलमिलाता जायेगा।
बाल बिखरे, लड़खड़ाई चाल, आँखें मदभरी,
आज लोगों में कोई अंधेर करता जायेगा।

देख ले ये मरनेवाले, आँखें भरकर देख ले,
सॉंस उलटते ही किसी से फिर न देखा जायेगा।
रोनेवाले रोयेंगे और भीगती जायेगी रात,
तारे भी टूटेंगे, आँसू भी टपकता जायेगा।
सॉंस जबतक है, किसी का ध्यान आयेगा "फिराक़"
एक कॉंटा सा कलेजे में खटकता जायेगा।"

—'फ़िराक़'

ऊपर जो कविताएँ उद्धृत की गयी हैं उनमें निहित तत्त्वपर पाठक दृष्टि पात करें। इनमेंसे अधिकांशमें प्रेमकी ऊँचाई नहीं, वासनाकी गहराई है। इसी धरातलपर हिन्दीके रीतिकाल* के कवियोंने भी कविताकी है,

---

* कुन्दन को रँग फीको लगै
झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में
मञ्जु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं
मतिराम लहे मुसुकानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि
त्यों त्यों खरी निखरै सी निकाई॥
मोरपखा मतिराम किरीट में
कण्ठ बनी बन माल सोहाई।
मोहन की मुसुकानि मनोहर
कुंडल डोलनि में छवि छाई॥
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि
को न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा
कहौं मीठा लगै अँखियानि लोनाई।

—मतिराम

यद्यपि अनेक दृष्टियोंसे वे उर्दूके कवियोंको पीछे छोड़ गये हैं। रीतिकालके कवियोंकी समालोचना करते हुए स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्लने इस प्रकार लिखा था :—

ए अलि या बलि के अधरानि में
आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों
कुच दोयन की चढ़ती उनई सी।
ज्यों कुच त्यों ही नितम्ब चढ़े
कछु ज्यों ही नितम्ब त्यों चातुरई सी।
जानें न ऐसी चढ़ाचढ़ी में
किहिधौं कटि बीचहिं लूटि लई सी।

—पद्माकर

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो
आई रितु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी
सुंदर की सुहागिनि की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की हिये में आनि खरकी
सुमिरि प्रान प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ!
बीती औधि आवन की लाल मन भावन की
डग भईं बावन की सावन की रतियाँ॥

—सेनापति

पिय रति की बतियाँ कहीं
सखी लखी मुसकाय।
कै कै सबै टलाटली
अली चलीं सुख पाय।

—बिहारी

"यद्यपि यह निश्चित है कि स्थायी साहित्यमें रीतिकालके सौन्दर्योपासक और प्रेमी कवियोंका स्थान अमर है, पर अमर साहित्यके वर्गीकरणमें वे किस कक्षामें रखे जायँ यह विचारणीय है। प्रबन्ध और मुक्तककी दृष्टिसे स्थायी साहित्यका वर्गीकरण नहीं हो सकता। यह ठीक है कि प्रबन्धके भीतरसे जीवनके व्यापक तत्त्वोंपर कवि-दृष्टिके ठहरनेकी अधिक संभावना रहती है; परन्तु मुक्तक इसके लिए बिलकुल अनुपयुक्त हो, यह बात नहीं है। हिन्दीके भक्त कवियोंने फुटकर गीतोंसे और उमर खैयामने मुक्तक रुबाइयोंकी सहायतासे जीवनके चिरन्तन सत्योंकी जैसी मार्मिक व्यंजना की है वह मुक्तक काव्यके महत्त्वको प्रत्यक्ष कर देती है। अँगरेज़ीके श्रेष्ठ कवियोंके लीरिक्स भी इसके उदाहरण हैं। हमें यदि श्रेणी-विभाग करनेको कहा जाय तो हम कवियोंकी कृतियोंकी परीक्षा करते हुए यह पता लगावेंगे कि जीवनके जिस अंगको लेकर वह चले हैं, वह सत्य है या नहीं, महत्त्वपूर्ण है या नहीं। सत्य और महत्त्वपूर्ण होनेके लिए जीवनका अनुभव करने, उसका रहस्य समझने, उसके सौंदर्यका साक्षात्कार करने तथा उसकी समस्याओंको सुलझानेकी आवश्यकता होगी। कविको तमाशाई बनकर बाहरसे उछल-कूद करनेकी आवश्यकता नहीं है, उसे जीवनके रङ्गमञ्चका प्रतिभाशाली नायक बनकर अपना कार्य करना पड़ता है। जितनी सरलता, स्पष्टता और सुन्दरताके साथ वह यह कार्य कर सकेगा उतनी ही सफलताका अधिकारी होगा। जबतक कवि जीवन-सरितामें अवगाहन न कर बाहरसे उसके घाटोंकी शोभा देखता रहेगा, तबतक उसकी रचना न संगत ही हो सकेगी और न महत्त्वपूर्ण हो। घाटोंकी शोभा देखनेसे उसे इन्द्रिय-सुख भले ही प्राप्त हो, पर वह सुख न मिलेगा जिसे आत्म-प्रसाद या परनिर्वृत्ति कहते हैं। ऐसा करके वह कुछ समयके लिए साहित्यकी परीक्षा-समितिसे सफलताका सम्मति-पत्र भले ही पा जाय, पर जब सैकड़ों वर्षोंके अनन्तर जीवन-सम्बन्धी मौलिक सन्देश सुनानेवालों और उसके सच्चे सौन्दर्यका प्रत्यक्ष कर दिखानेवालोंकी खोज होने लगेगी,

तब उसे कौन पूछेगा ? साहित्यकी जाँचकी यही सर्वोत्तम कसौटी है। रीतिकालके अधिकांश कवियोंको बँधी हुई लीकपर चलना पड़ा, उन्हें अपनी ही बनाई हुई सीमामें जकड़ जाना पड़ा। साहित्यका उच्च लक्ष्य भुला दिया गया। तत्कालीन कवियोंकी कृतियाँ विशृंखल, निरंकुश और उद्दाम हैं, उनमें कहीं उच्चरित उच्च भावनाएँ कलुषित प्रसंगोंके पास ही खड़ी हैं तो कहीं सौंदर्य और प्रेमके मर्मस्पर्शी उद्गार, अतिशयोक्ति और बातकी करामतसे घिरे हैं। कहीं उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंसे वास्तविक बात दब गयी है तो कहीं श्लेषकी ऊटपटाँग योजना भानुमतीका पिटारा दिखला रही है, जैसे किसीको कुछ कहना ही न हो, कविता केवल दिल-बहलावके लिए गपशप या ऐयाशोंकी बहककी हुँकारी हो। यह सब होते हुए भी कुछ प्रतिभाशाली कवियोंकी कृतियाँ रीतिकी सामान्य शैलीसे बहुत ऊपर उठकर मुक्तक छन्दोंमें जैसी सुन्दर और तीव्र भाव-व्यंजना करती हैं, उससे कवियोंके हार्दिक आन्दोलनका पता लगाया जा सकता है। कुछ कवियोंने प्रेमके सूक्ष्म तत्त्वोंका निरूपण भी किया है, केवल विभाव, अनुभाव आदिका रूप खड़ा करके रस-निष्पत्तिकी चेष्टा ही नहीं की है। ऐसे कवियोंका स्थान सौंदर्य-स्रष्टा मौलिक साहित्यकारोंके बीचमें चिरकालतक रहेगा, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि सौंदर्य सृष्टि करनेमें अन्य देशोंके श्रेष्ठ कवियोंने जिस सूक्ष्म दृष्टि और स्वादत्त शक्तिका परिचय दिया है, वह रीतिकालके हिन्दी कवियोंमें बहुत अधिक मात्रामें नहीं मिलती।"

हिन्दीके रीतिकालीन कवियोंकी यह आलोचना इन्द्रिय-जन्य वासनामें अपने आपको प्रवाहित करनेवाले उर्दू कवियोंके लिए भी उपयुक्त है।

उर्दू काव्यकी उत्कृष्टता

उर्दू काव्यकी उत्कृष्टताके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता; स्वयं हिन्दीके विद्वानोंने, जिनके ऊपर उर्दूकी उपेक्षाका आरोप लगाया जाने लगा है, उसको स्वीकार किया है। पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय लिखते हैं :—

"न वह साहित्य साहित्य है, न वह कल्पना कल्पना, जिसमें जातीय भावोंका उद्‌गार न हो। जिन काव्यों या ग्रन्थोंको पढ़कर जीवनी शक्ति जागरित नहीं होती, निर्जीव धमनियोंमें गरम रक्तका संचार नहीं होता, हृदयमें देश-प्रेमकी तरंगें तरङ्गित नहीं होतीं, वे केवल निस्सार वाक्य-समूह मात्र हैं। जो भाव देशको, जातिको, समाजको स्वर्गीय विभवसे भर देते हैं, उनमें अनिर्वचनीय ज्योति जगा देते हैं, उनको स्वावलम्बी, स्वतन्त्र, स्वधर्मरत और स्वकीय कर देते हैं, यदि वे भाव किसी उक्तिकी सम्पत्ति नहीं, तो वे मौक्तिकहीन शुक्ति हैं। जिसमें मनुष्य-जीवनकी जीवन्त सत्ता नहीं, जो प्रकृतिके पुण्य पाठकी पीठ नहीं, जिसमें चारु चरित चित्रित नहीं, मानवताका मधुर राग नहीं, सजीवताका सुन्दर स्वाँग नहीं, वह कविता सलिल-रहित सरिता है। जिसमें सुन्दरता विकसित नहीं, मधुरता मुखरित नहीं, सरसता विलसित नहीं, प्रतिभा प्रतिफलित नहीं, वह कवि-रचना कुकवि-वचनावली है। जो गद्य अथवा पद्य जातिकी आँखें खोलता है, पतेकी सुनाकर राहपर लगाता है, मर्मभेदी बातें कह सावधान बनाता है, चूकें दिखा चौकन्ना करता है, चुटकियाँ ले सोतोंको जगाता है, वह इस योग्य है कि सोनेके अक्षरोंमें लिखा जावे, वह अमृत है जो

मृततोंको जिलाता है। हिन्दीमें ऐसे गद्य-पद्य विरल हैं। उर्दू में कलामें अकबरमें यह कमाल नज़र आता है, देखिए:—

वे परदा नज़र आयीं कल जो चंद बीवियाँ
अकबर ज़मी में ग़ैरते क़ौमी से गड़ गया।
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों के पड़ गया।"

उपाध्यायजीके अतिरिक्त हिन्दीके अन्य अनेक कवियों और लेखकोंने भी समय-समयपर उर्दू काव्यके महत्त्वको स्वीकार किया है। इस महत्त्वका रहस्य क्या है, इसपर हमें विचार करना चाहिए।

उर्दू काव्यके सौन्दर्य्यके तीन आधार हैं—(१) सूफ़ी भाव; (२) व्यङ्गय-प्राधान्य; (३) अभिव्यक्ति-सम्बन्धी सरलता और सुगठन। इन तीनोंमेंसे भी तीसरी विशेषतापर सबसे अधिक जोर दिया गया है। मौलाना हालीका कहना है:—

"शायरीका मदार (आधार) जिस क़दर अलफाज़ (शब्द) पर है उस क़दर मानी (भाव, अर्थ) पर नहीं, मानी कैसे ही बुलन्द (उच्च) और लतीफ़ (सूक्ष्म, सुन्दर) हों, अगर उम्दा अलफाज़में बयान नहीं किये जायँगे, हरगिज़ दिलोंमें घर नहीं कर सकते, और एक मुब्तज़ल (तुच्छ) मजमून पाक़ीज़ा (परिष्कृत) अलफाज़में अदा होनेसे क़ाबिल तहसीन हो सकता है।"

× × ×

"नामालूम तौरपर बयानके उसलूब (कहनेके ढंग) आहिस्ता-आहिस्ता इज़ाफा किये जाते हैं और उनको रफ्ता-रफ्ता पब्लिकके कानोंसे मानूस (परिचित) किया जाता है और कदीम उसलूब (रीति, प्रकार) जो कानोंमें रच गये हैं उनको बदस्तूर क़ायम और बरकरार रक्खा जाता है, यहाँतक कि अगर इल्मकी तरक्क़ीसे बहुतसे क़दीम शाइराना खयालात महज ग़लत और बेबुनियाद साबित हो जायँ तो भी जिन अलफाज़के

ज़रियेसे वह खयालात ज़ाहिर किये जाते थे वह अलफ़ाज तर्क नहीं किये जाते।"

× × ×

"नाज़रीनको मालूम रहे कि जब किसी मुल्क या कौम या शख़्सके खयालात बदलते हैं, तो खयालातके साथ तर्ज़-बयान नहीं बदलती, गाड़ीकी रफ्तारमें फ़र्क आ जाता है मगर पहिया और धुरा बदस्तूर बाक़ी रहता है·········यह मुमकिन है मुताखरीन (अर्वाचीन) कदीम शोरा (प्राचीन कवियों) के बाज़ खयालातकी पैरवीसे दस्तबरदार हो जायँ; मगर उनके तरकीए-बयानसे दस्तबरदार नहीं हो सकते। जिस तरह किसी ग़ैर मुल्कमें नये वारिद होनेवाले सय्याह (नवीन विदेशी पथिक) को इस बातकी जरूरत है कि मुल्कमें रूशनास (परिचित) होने और अहले-मुल्क (देशवासियों) के दिलमें जगह करनेके लिये उसी मुल्ककी जबानमें गुफ्तगू करनी सीखे और अपनी वजा, सूरत और लिबास (चाल-ढाल और वेषभूषा) की अजनबीयत (विचित्रता, विदेशीपन) जबानके दस्तहाद्से बिलकुल जायल (तिरोहित, विनष्ट) कर दे, इसी तरह नये खयालातके शाइरको भी सख्त ज़रूरत है कि तर्ज बयानसे बहुत दूर न जा पड़े, और जहाँतक मुमकिन हो अपने खयालातको उन्हीं पैरायोंमें (परिष्कृत, अलंकृत प्रकारसे) अदा करे जिनसे लोगोंके कान मानूस हों और क़ुदमाका दिलसे शुक्रगुजार हो जो उसके लिये ऐसे मँझे हुए अलफ़ाज़ व महावरात व तशबीहात (उपमा) व इस्तआरात (रूपक) वगैराका जखीरा छोड़ गये।"

× × ×

"शाइरका यह काम नहीं कि इन खयालातसे बिलकुल दस्तबरदार हो जाय, बल्कि उसका कमाल यह है कि हक़ायक व वाक़आत (वास्तविकता-वस्तुस्थिति) और सच्चे नैचुरल खयालातको उन्हीं ग़लत और बेअसल बातोंके पैरायेमें बयान करे और उस तिलस्मको जो क़ुदमा (प्राचीन)

बाँध गये हैं, हरगिज़ न टूटने दे। वर्ना वह बहुत जल्द देखेगा कि उसने अपने मन्तर (मन्त्र) मेंसे वही अंछर (अक्षर) भुला दिये हैं जो दिलोंको तसख़ीर करते थे।"

उर्दू काव्यमें मौलाना हालीद्वारा बताये गये काव्य-गुणोंकी यथेष्ट प्रचुरता है। अध्यापक रघुपतिसहायने ठीक ही लिखा है :—

"मैं जो रह-रहकर उर्दूकी तारीफ कर उठता हूँ वह इसलिए नहीं कि उर्दू फारसी लिपिमें छपती है या उसमें अरबी फारसीके शब्द आते हैं बल्कि इसलिए कि उसमें ठेठ शब्दोंकी भरमार-सी होती है और इसलिए भी कि आधुनिक हिन्दीके मुकाबिलेमें खड़ी बोली या पच्छिमी हिन्दीके वाक्योंका साँचा और पच्छिमी हिन्दी (जिसे उर्दू हिन्दीवाले दोनों अपना चुके हैं) की शैली, उसका स्वाभाविक रूप, उसकी ऊँची मिसालें, उसका सिजिल, सुलझा, रचा और सँवारा हुआ रूप उर्दूमें मिलता है। मगर उर्दूकी यह विशेषता कुछ ही दिनोंतक उर्दूकी विशेषता रहेगी। जहाँ हिन्दीवालोंकी आँखें खुलीं, उर्दूवालोंकी यह विशेषता वे छीन लेंगे।"

निस्सन्देह उर्दू शैलीमें जहाँ एक ओर विदेशीपन है—जिसके परिणाम-स्वरूप उसमें अस्वाभाविकता आ गयी है—वहाँ दूसरी ओर ठेठ शब्दोंको ग्रहण करके उनके प्रयोग-द्वारा विचित्र सौन्दर्य्य-सृष्टि करनेकी उसमें प्रवृत्ति भी है। ऐसी अवस्थामें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उर्दू शैलीके एक अंशमें देशभाषाके संस्कृत गर्भित रूपकी अपेक्षा जिसमें उपादेय तद्भव शब्दोंकी उपेक्षा की जाती है, जीवनके अधिक कीटाणु हैं।

ग़ालिब, ज़ौक़, अकबर, हाली आदि अनेक सुकवियोंकी पंक्तियाँ पिछले पृष्ठोंमें दी जा चुकी हैं। यहाँ कुछ और पद्य उपस्थित किये जाते हैं; भाषाकी सफ़ाई, भावोंकी बारीकी आदिका पाठक रसास्वादन करें—

कोई उम्मीद बर नहीं आती।
कोई सूरत नज़र नहीं आती।

मौत का एक दिन मुऐय्यन है।
नींद क्यों रात भर नहीं आती।
आगे आती थी हाले दिल पै हँसी।
अब किसी बात पर नहीं आती।
है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ।
वरना क्या बात कर नहीं आती।
हम वहाँ हैं जहाँ से हम को भी।
कुछ हमारी खबर नहीं आती।
मरते हैं आरज़ू में मरने की।
मौत आती है पर नहीं आती।
देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा।
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है।
वाये गर मेरा तेरा इंसाफ़ महशर में न हो?
अब तलक तो ये तवक़्क़ो है कि वाँ हो जायगा।

—ग़ालिब

किसी बेकस को ऐ बेदाद गर मारा तो क्या मारा।
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा।
न मारा आप को जो ख़ाक हो अकसीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अकसीर गर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से अम्मारे को गर मारा।
नहंगो अज़दहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा।
नहीं वह क़ौल का सच्चा हमेशा क़ौल दे दे कर।
जो उसने हाथ मेरे हाथ पर मारा तो क्या मारा।
तुफ़ंगों तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिल के।
इलाही फिर जो दिल पर ताक के मारा तो क्या मारा।

—ज़ौक़

की खुदा ने काफ़िरों पर ऐ सनम जन्नत हराम।
वर्ना किस की आँख पड़ती तेरे होते हूर[1] पर।

—नासिख़

× × ×

मसजिद में उसने हमको आँखें दिखा के मारा।
काफिर की देखो शोख़ी घर में खुदा के मारा।

—ज़ौक़

× × ×

इलाही क्या करें ज़ब्ते-मोहब्बत, हम तो मरते हैं,
कि नाले तीर बन-बन कर कलेजे में उतरते हैं!
जफ़ा पर जान देते हैं, सितम पर तेरे मरते हैं,
यह नाकामे-मोहब्बत, सच तो यह है, काम करते हैं।
कहें क्या हम पै जो सदमे गुज़रते हैं, गुजरते हैं।
लगाया जिस घड़ी दिल, उस घड़ी को याद करते हैं!
तमाशा जब से देखा है, मेरे दिल के तड़पने का;
तमाशा है, कि वह अपनी नजर से आप डरते हैं!
नहीं आते न आएँ वह, गए ताओं तवाँ जाएँ,
तुम्हीं पर आज हम ऐ बेकरारी, सब्र करते हैं।
तहे खन्जर यह कहता था, सितमगर से गुलू अपना,
जो यों कट-कट के लड़ते हैं, वह कब घुट-घुट के मरते हैं?
हम इस ग़फलत के सदके, कोई दम छुटते तो हैं ग़म से,
कि जिस दम होश आता है, तो पहरों फ़िक्र करते हैं!

---

१ जिन मुसल्मानोंपर ईश्वर प्रसन्न होता है उन्हें वह स्वर्गमें परियाँ देता है, जिन्हें 'हूर' कहते हैं।

कभी यह दिल तमाशागाह था, ऐशो मसर्रत का,
अब इसमें हसरतो, शौक़ो, तमन्ना सैर करते हैं !
ज़ुबां से गर किया भी वादा तूने, तो यक़ीं किस को,
निगाहें साफ़ कहती हैं, कि देखो यों मुकरते हैं !
कोई कह दे कि तुमने दिल लिया, फिर देखिए क्या-क्या,
उचटते हैं, उखड़ते हैं, पलटते हैं, मुकरते हैं !
तुम्हारी बद-मिज़ाजी से, हमें क्योंकर न ख़ौफ़ आए,
मसल मशहूर है साहब, बुरे से सब ही डरते हैं !
न पूछो 'दाग़' हम से इन्तज़ारे-यार की सूरत,
यह आँखें जानती हैं खूब, जो नक्शे गुज़रते हैं।

—दाग़ देहलवी

जाँचकर ताबे नज़र को रूप जाना देखिए
देख सकिए कौंदती बिजली, तो हाँ-हाँ देखिए
जान की राहत से बढ़कर दो गिरह कपड़ा नहीं
देखिए अब दिल की उलझन या गरेबाँ देखिए
कौल जब तक कौल है काबिल भरोसे के नहीं
मुँह से कहना क्या किसी दिन करके अहसाँ देखिए

—'आरज़ू' लखनवी

× × ×

हाथ मलते उठ गए बालीं से यह कहकर तबीब
सुबह तक जीता भी है बीमारे हिजराँ देखिए

—'असर' लखनवी

× × ×

हो गया ज़ाहिर मआले दर्दे पिनहाँ देखिए
मेरा दामन देखिए मेरा गरेबाँ देखिए

सैर हस्ती में यही एक देखने की चीज़ है
दिल के आईने में अँकसे रूए तावाँ देखिए
मुझमें अब शिकवों की ताक़त है न दम फ़रियाद का
आप इतमीनान से मुझको परेशाँ देखिए
अपने दिल को रहम पर मजबूर करने के लिये
एक परेशाँ हाल का हाले परेशाँ देखिए

—'अरशदी' बदायूनी

× × ×

फूँकता हूँ दिल के दाग़ों को चिराग़ाँ देखिए
इस बियाबाँ को बताता हूँ गुलिस्ताँ देखिए
छींट है रह जाय दिल में खून की क्यों सोज़े ग़म
जिसको आँसू कीजिए फिर दाग़े दामाँ देखिए
दिल के दाग़ों पर बहारे जाविदाँ आने लगी
इन निगाहों को तसद्दुक देखिए हाँ देखिए
फूँक दी मौजे हवाए गुल ने रूहे बेखुदी
अब किन आँखों से गरेबाँ को गरेबाँ देखिए

—'आशुफ्ता' लखनवी

× × ×

हुस्न हर आसान को मुश्किल बनाता है मगर
इश्क़ कहता है कि हर मुश्किल को आसाँ देखिए

—'एजाज़' इलाहाबादी

छा रहा हूँ एक आलम पर फ़ना होने के बाद
अब कहाँ पहुँचेगी वह ख़ाके परेशाँ देखिए
पहले रूदादे दिले नाकाम पर हो इक नज़र
फिर जहाँ से चाहिए चाके गरेबाँ देखिए

—'दिल' शाहजहाँपुरी

रञ्ज है राहत से पैदा और राहत रञ्ज से
रञ्जो राहत एक हैं दोनों को एकसाँ देखिए
—'राना' देहरादूनी

× × ×

दिलको खोया जान दी नज़रों से उनकी गिर गए
अपने हाथों अपनी बरबादी का सामाँ देखिए
मुश्किलाते ज़िन्दगी में मौत सबसे सख्त है
इश्क़ में यह भी मगर होती है आसाँ देखिए
—'रफ़ीक़' इलाहाबादी

× × ×

मिट रहा है जोशे वहशत जा रही है फ़सले गुल
फिर मिले कब चाक करने को गरेबाँ देखिए
मिल गया दस्ते जुनूँ के वास्ते इक मशग़ला
काम क्या मौजे से आया है गरेबाँ देखिए
—'ज़ाहिद' इलाहाबादी

× × ×

आलमे जोशे जुनूँ के दोनों मज़्हर एक हैं
हाथ में दामन औ दामन में गरेबाँ देखिए
शिकवये बेदाद करके मैंने ये बेदाद की
हाय किन आँखों से अब उनको पशेमाँ देखिए
दाग़ हाये दिल मेरे मिट जायँ या क़ायम रहें
आप घर बैठे हुए सैरे-चराग़ाँ देखिए
—'नूह' नारवी

× × ×

दस्त वहशत का मेरे कारे नुमायाँ देखिए
टुकड़े-टुकड़े आस्तीं दामन गरेबाँ देखिए
जिस तरह भी हो सके रंगे गुलिस्ताँ देखिए
क़ैद में रहकर असीरों का यह अरमाँ देखिए
दैर में पढ़ते हैं पाँचो वक्त की 'बिस्मिल' नमाज़
ऐसा हिन्दू देखिए, ऐसा मुसलमाँ देखिए

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

× × ×

बहना कुछ अपनी चश्म का दस्तूर हो गया,
दी थी खुदा ने आँख सो नासूर हो गया।

× × ×

अच्छे नहीं होने के मरीज़ाने मुहब्बत,
ईसा भी उतर आएँ अगर चर्खे बरीं से।

—बिस्मिल

× × ×

खुदा याद आ गया मुझको बुतोंकी बेनियाज़ी से,
मिला बामे हक़ीक़त ज़ीनए इश्के मजाज़ी से।

× × ×

लुत्फे-कलाम क्या जो न हो दिल में ज़ख्मे इश्क़,
बिस्मिल नहीं है तू तो तड़पना भी छोड़ दे।

× × ×

उम्र गुज़री एक बुते काफ़िर नज़र आता नहीं,
हश्र में क्यों कर खुदा का पाएँगे दीदार हम।

—नासिख

× × ×

हमसे खुल जाओ बवक्ते मैपरस्ती एक दिन,
वर्ना हम छेड़ेंगे रख कर उज़्रे मस्ती एक दिन।

—ग़ालिब

× × ×

खुश्क सेरों तने-शाइर का लहू होता है,
तब नज़र आती है इक मिसरए-तर की सूरत।
समझ में साफ़ आ जाये 'फ़साहत' इसको कहते हैं
असर हो सुननेवालों पर 'बलाग़त इसको कहते हैं।

× × ×

चलता हूँ थोड़ी दूर हरेक तेज़ रौ के साथ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं॥

—ग़ालिब

× × ×

बद न बोले ज़ेरे-गर्दूं गर कोई मेरी सुने,
है ये गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने।

× × ×

रखियो ग़ालिब मुझे इस तल्ख़नवायी में मुआफ़।
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सिवा होता है॥
आँखों में कौन आके इलाही! निकल गया,
किसकी तलाश में मेरे अश्के-रवाँ चले!

× × ×

निगाहे-यार तो ईज़ा-रसानी में बराबर है,
कभी चलने में ख़ञ्जर है, कभी चुभने में नश्तर है।
मुझे तालीम क्यों देते हो, क़ानूने-मुहब्बत की,
तुम्हें शायद नहीं मालूम यह, बन्दा 'पिलीडर' है।

बड़े दिन में जो उसने 'केक' भेजा तो हुआ ज़ाहिर,
तुम्हारा चाहने वाला किसी 'होटल' का 'बटलर' है!
मुहब्बत में वह 'पॉलिटिक्स' की बातें न लिख भेजें;
हमारे ख़त पर अब सरकार की जानिब से सेन्सर है!
तकल्लुफ़ सब यह बेजा है, तकल्लुफ की ज़रूरत क्या;
ख़ुशी से, शौक़ से, आप आइए, यह आपका घर है!
रहे गाँधी की टोपी सर पै जिसके, पाँव में चप्पल,
समझ लेना यही दिल में, कि यह भी कोई लीडर है!
हमेशा दोस्तों के साथ पीकर मस्त रहते हो,
तुम्हारी ऐसी 'बिस्मिल' ज़िन्दगी किसको मयस्सर है?

× × ×

जानेवाले चल दिये दुनिया की बस्ती छोड़कर,
रोने वाले एक दिन क्या उम्र भर रोया करें।

—रवाँ

प्रेमीका पत्र

पूछ लो दिल से जो मानो न हमारा कहना;
है कठिन बात जवानी में अकेले रहना।
चश्मे-बद दूर, तुम्हारा अभी सिन ही क्या है
अभी क्या लुत्फ़ उठाये, अभी देखा क्या है!
सिक्कये-हुस्न बनाया गया चलने के लिए,
न कि यों आतशे-फ़ुरक़त में पिघलने के लिए!

भाषाकी सरसता और भावकी मार्म्मिकता स्व० श्रीआरज़ूकी इन पंक्तियोंमें देखने योग्य है। एक प्रेमीका पत्र एक विधवाके नाम है और विधवाका उत्तर भी है :—

शमअ बेकार है जब इसमें उजाला न हुआ;
हुस्न किस काम का गर देखने वाला न हुआ!
कभी आयेंगी घटाओं पे घटायें काली;
सर पे लायेंगी बलाओं पे बलायें काली।
दिल धड़क जायगा बादल के कड़क जाने से;
जी दहल जायगा कौंदे के लपक जाने से।
झोंके इठलाते हवा के जो कभी आयेंगे;
तीर की तरह कलेजे में उतर जायेंगे;
आ के बरसेंगी जो घनघोर घटायें बन में;
तीर बन बन के हर एक बूँद लगेंगी तन में।
घाव पर घा लगायेंगे पपीहे अक्सर;
फूल से डाल पे मण्डलायेंगे भौंरे अकसर।
दिल को बरमाएगी जब बाग़ में कोयल की सदा;
कुछ ख़बर है तुम्हें क्या हाल तुम्हारा होगा!
होली गाते हुए सुन लोगी किसी को जो कभी;
टीस वह होगी जिगर में कि उलट जायगा जी।
जिन्दगी वह है, जो हँस-खेल के खुश हो के कटी;
क्या कटी, उम्र अगर ग़म में कटी, रो के कटी!
नक़द दिल नज़्र करूँ फ़िक्र यह है जान यह है;
हौसला यह है तमन्ना यह है, अरमान यह है!

× × ×

विधवाका उत्तर

आपने ख़त तो बहुत खूब लिखा है लेकिन।
सख़्त अफ़सोस कि इक़रार नहीं है मुमकिन॥
जेब देता नहीं अल्क़ाब मुझे प्यारी का।
यों दुखाओ न दुखा दिल किसी दुखियारी का॥

दिल नहीं टूटे हुए दिल से लगाने क़ाबिल।
मैं सिपह बख्त नहीं प्यार जताने काबिल॥
साथ सिन्दूर के स्वामी की चिता पर रख कर।
फूँक दी मैंने जवानी भी चिता पर रख कर॥
आप कहते हैं कि मौसम मुझे तड़पाएँगे।
मैं समझती हूँ कि पैग़ाम वफ़ा लाएँगे॥
आसमाँ पर जो घटा आयेंगी काली-काली।
मैं कहूँगी कि हैं दुख-दर्द बँटाने वाली॥
बिजली तड़पेगी, तो समझूगी मेरा दिल तड़पा;
आसमाँ पर भी कई मद्द मुक़ाबिल तड़पा।
कभी बादल जो बरसते हुए आयेंगे नजर;
मैं यह समझूँगी कि रोते हैं मेरी हालत पर।
क्या सुनाएँगे पपीहे मुझे बानी अपनी;
मेरा ही दुख तो कहेंगे वह ज़बानी अपनी।
'पी कहाँ' जब कभी सुनिये कि सुख़न उनका है;
यह समझिये कि ज़बाँ मेरी देहन उनका है।
ख़्वाब में मुझको कलेजे से लगाने के लिए;
रोज़ आते हैं मेरा रञ्ज बटाने के लिए।

× × ×

जिसको अकेले में आ-आकर ध्यान तेरा रह रह के सताये,
चुपके-चुपके बैठा रोये आँसू पोंछे और रह जाये।
सूक्ष्म बात पहेली ऐसी, बस वही बूझे जिसको बुझाये,
भेद न पाये तो घबराये, फेर जो पाये तो घबराये।
मुझसा बातें बनाने वाला, हँस के हँसाये रोके रुलाये,
जब वह बुलायें तो क्या कहिये, जाये औ मुँह तकता रह जाये।

सारी कहानी बेचैनी की, माथे पर लिक्खे देती है,
ऐसी बात कि घुटते-घुटते मुँह तक आये और रह जाये।
उसके मुँह तकने को न पूछो, आस भी जिसको हिरास भी है,
मुँह से निकाले तो पछताये, जी में रक्खे तो पछताये।
तुमसे छिपेगी चाहत क्योंकर, जब उसमें भी यह खटका है,
अपनी बीती एक कहे तो जग बीती का भरम खुल जाये।
एक न सुनने वाले से कहना, पत्थर ही से टकराना है,
बात भी वह जो डरते-डरते होके अधूरी मुँह तक आये।
छेड़ के पूछो, पूछ के समझो, सुनके न ऐसी बात सुनाओ,
आस लगाकर कहनेवाला, अपना मुँह ले कर रह जाये।
हाथ की चोट न सहनेवाला, चोट भी करते तो डरता है,
जैसे बेबस साँप चुटीला, पल्टे खा-खाकर रह जाये।
"आरज़ू" ऐसे यों बहुतेरे, हँसमुख पत्थर कोई नहीं है,
चैन समझ ले बेचैनी को, हाय करे और हँसता जाये।

—आरज़ू

× × ×

ऐ शोख़ तुझ नयन में देखा निगाह कर कर।
आशिक़ के मारने का अंदाज़ है सरापा॥
न होवे उसे जग में हरगिज़ करार।
जिसे इश्क़ की बेक़रारी लगे॥
वली यूँ कहे तू अगर यक बचन।
रक़ीबों के दिल में कटारी लगे॥

—वली

तिरी गाली मुझे दिलकूँ प्यारी लगे।
दुआ मेरी तुझे मन में भारी लगे।

तिरी क़द्र आशिक़ की बूझे सजन ;
किसी साथ गर तुझकूँ यारी लगे।
भुला देवे वह ऐशोआराम सब—
जिसे ज़ुल्फ़ में बेक़रारी लगे।
नहीं तुझसा औ' शोख़ ऐ मनहरन !
तिरी बात दिलकूँ नियारी लगे।
भवाँ तेरी शमशार-ओ-ज़ुल्फ़ां कमंद
पलक तेरी जैसे कटारी लगे।
वही क़द्र 'फ़ाइज़' की जानें बहुत
जिसे इश्क़ का ज़ख्म कारी लगे।

—फ़ाइज़

यार का मुझको इस क़दर डर है।
शोख़, ज़ालिम है और सितमगर है।
आबे हयात जाके किसू ने पिया तो क्या ?
मानिंदे ख़िज़्र जग में अकेला जिया तो क्या ?
सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
हमने शब हिज्र की दौलत से मज़ा लूटा है।

—शाह हातिम

केले के गाभे से मुलायम दो हात।
देख के मुरझाते थे केले के पात।
नैन दो कँवल और दो गुल हैं गाल।
कली चम्पे की नाक की है मिसाल।
जूड़ा नहीं गेंद है कन्हैया की।
या सहस नागनी है दरिया की।

हर इक पनिहारिन वां इक अपछरा थी।
कूएँ के गिर्द इंदर की सभा थी।
दिल फ़रेबी की अदा उसकी अनूप।
रूप में थी राधिका सूँ भी सरूप।

—फ़ाइज़

मेरा जान जाता है यारो बचा लो।
कलेजे में काँटा गड़ा है निकालो।
न भाई मुझे ज़िंदगानी न भाई।
मुझे मार डालो, मुझे मार डालो।
ख़ुदा के लिए ऐ मेरे हमनशीनो!
वह बाँका जो जाता है उसको बुला लो।
अगर वह ख़फ़ा हो के कुछ गालियाँ दे
तो दम खा रहो, कुछ न बोलो न चालो।
न आवे अगर वह तुम्हारे कहे से।
तो मिन्नत करो घेरे-घारे मना लो॥

—सोज़

किस किस तरह से उम्र को काटा है 'मीर' ने।
तब आख़िरी ज़माने में यह रेख़्ता कहा॥
हमारे आगे तेरा जब किसू ने नाम लिया।
दिले सितम ज़दह को हमने थाम थाम लिया॥
लगा न दिल को कहीं, क्या सुना नहीं तूने?
जो कुछ कि 'मीर' का इस आशिकी में हाल हुआ।
मेरे सलीके से मेरी निभी मुहब्बत में।
तमाम उम्र में नाकामियों से काम लिया।

हम जानते तो इश्क़ न करते किसू के साथ।
ले जाते दिल को ख़ाक में इस आरज़ू के साथ॥
फिरते हैं मीर ख़ार कोई पूछता नहीं।
इस आशिक़ी में इज़्ज़ते सादात भी गई॥
फोड़ा सा सारी रात जो पकता रहेगा दिल।
तो सुब्ह तक तो हाथ लगाया न जायगा॥
याद उसकी इतनी ख़ूब नहीं मीर बाज़ आ।
नादान फिर वह दिल से भुलाया न जायगा॥

—मीर

अगर ऐसा ही अब सताइएगा।
ख़ैर, जीता मुझे न पाइएगा॥
दिल हरइक से लड़ाते फिरते हो।
आँख तो हमसे भी लड़ाइयेगा॥
'असर' इतना तो इल्तमास करूँ।
हर किसू को दग़ा न खाइएगा॥
जान तक दो जिसे कि चाहो तुम।
दिल को टुक देखकर लगाइएगा॥

—असर

हम जिस पै मर रहे हैं, वोह है बात ही कुछ और
आलम में तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ?
उसके जाते ही हुई क्या मेरे घर की सूरत।
न वोह दीवार की सूरत है न दर की सूरत॥

—ग़ाली

अन्दाज़ वो ही समझे मेरे दिल की आह का।
ज़ख़्मी जो हो चुका हो किसी की निगाह का॥

सौ बार देखीं मैंने तेरी बेवफ़ाइयाँ।
तिसपर भी नित ग़रूर है दिल में निबाह का॥
ज़ालिम जफ़ा जो चाहे सो कर मुझ पै तू वले।
पछतावे फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं॥
फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर।
लग जाये, देखियो न किसी की नजर कहीं॥

—दर्द

चश्मे दुश्मन में न खिलना गुलेतर की सूरत।
जाओ बिजली की तरह, आओ नज़र की सूरत॥

—दाग़

मेरा पैग़ामे वस्ल ऐ क़ासिद!
कहियो सब से उसे जुदा करके।
चला करती में आगे से
जो नह महबूब जाता है।
कभी आँखें भर आती हैं
कभी दिल डूब जाता है।

—मज़मून

मजे लीडरी के उड़ाता चला जा,
मजे की यह बन्सी बजाता चला जा!
तेरी क़ौम वाले तेरी जै पुकारें;
तू हँस-हँस के गर्दन हिलाता चला जा!
असर हो न हो, तुझको इससे ग़रज़ क्या?
तू स्टेज पर गुल मचाता चला जा!
न सुन क़ौम का राग, बकने दे इसको,
अलग अपनी डफली बजाता चला जा!

हर अख़बार में तेरा ही तज़्करा हो;
गरज़ यों ही छपता छपाता चला जा !
तेरी क़ौम को चाहिए है खिलौने;
घरौंदा-सा रोज़ एक बनाता चला जा !
तुझे कौन पूछेगा, आजाद हो कर;
तू मन्ज़िल को पीछे हटाता चला जा !
बला से तेरी, मुल्क मिट जाए तेरा !
मगर अपनी शोहरत बढ़ाता चला जा !!
वज़ारत कभी कर, कभी इससे तौबा !
नया रोज़ एक गुल खिलाता चला जा !!
कभी 'भाई-चारे' का सबको सबक़ दे;
कभी भाइयों को लड़ाता चला जा !
कभी वॉयसरॉय से कर कानाफूसी;
कभी उनसे आँखें चुराता चला जा !
तू हम फ़ाक़ेमस्तों का लीडर बना है ;
जहाँ तक बने तुझसे खाता चला जा !
तेरी लीडरी है, बहुत खूब धन्धा !
ग़रज़ यों ही खाता-कमाता चला जा !!

—'वह' बहानवी

× × ×

एक ही दरजे में हम सब पढ़ते थे स्कूल के,
कुछ हमारे साथ के डिप्टी-कलक्टर हो गए !
एक साहब को ज़िलेदारी का ओहदा मिल गया,
एक साहब रेलवे में जा के नौकर हो गए !
एक साहब दौड़ते ही दौड़ते जब थक गए,
कुछ न बन पाए, तो बेचारे पिलीडर हो गए !

एक ने दूकान खोली चीड़ियों की शहर में;
औ तरक्क़ी करके वह सिगरेट के डीलर हो गए।
एक साहब ने ख़ुदा जाने, कि क्या तरकीब की,
डॉक्टर होने चले थे, वेक्सीनेटर हो गए!
एक साहब ने रचा यह ढोंग अपने वास्ते,
कुछ बढ़ाकर अपनी दाढ़ी वह कलन्दर हो गए!
एक साहब ने भुलाया अपना सब लिक्खा पढ़ा,
सीख कर मोटर चलाना, वह भी शोफ़र हो गए।
सारे दरजे में जो नालायक़ थे, उनका यह हुआ,
एक दौलतमन्द औरत के वह शौहर हो गए!
हमने भी चाहा बहुत कुछ, पर न कुछ भी हो सके,
आख़िर एक परचा निकाला और एडीटर हो गए!
एक साहब और हैं, सब से मजे में जो रहे,
देखते क्या हैं कि वह एकदम से लीडर हो गए!!
हमने एक दिन उनसे पूछा—भाई, कुछ बतलाओ तो,
सर से लेकर पैर तक, तुम कैसे खद्दर हो गए?
हँस के बोले—भाई, आख़िर क्या बताएँ हम तुम्हें,
पूछते हो तुम यह नाहक़ हमसे—"क्योंकर हो गए?"
सब का मतलब पेट है, बदले कोई चाहे जो रङ्ग,
लीडरी भी अपनी है, खाने-कमाने ही का ढङ्ग!!

'रही' बहानवी

किराया मकाँ का अदा करने जाऊँ,
कि बज्जाज़ो-ख़य्यात का बिल चुकाऊँ?
दवा लाऊँ या डॉक्टर को बुलाऊँ,
कि मैं टैक्स वालों से पीछा छुड़ाऊँ?
ख़ुदा रा बताओ कहाँ भाग जाऊँ?

मैं इस डेढ़ आने में क्या-क्या बनाऊँ !!

बहुत बढ़ गया है मकाँ का किराया,
इधर नल के आबे-रवाँ का किराया।
बक़ाया है "बरके तपाँ" का किराया,
ज़मीं पर है अब आसमाँ का किराया !!
मज़ालिम किरायों के क्या-क्या सुनाऊँ !
मैं इस डेढ़ आने में क्या-क्या बनाऊँ !!

है बच्चों की फीस और चन्दा ज़रूरी,
कुतुब-कॉपियों का पुलिन्दा जरूरी।
शिकम-परवरी का है धन्धा ज़रूरी,
यह आदम की 'ईजादे बन्दा' ज़रूरी !!
भला इन मसारफ़ की क्या बात लाऊँ ?
मैं इस डेढ़ आने में क्या क्या बनाऊँ !!

अज़ीज़ों की इमदाद मेहमाँ-नवाज़ी,
गरीबों को खैरात, अहसाँ तराज़ी।
खुराक और पोशाक में दुनियाँसाज़ी,
इधर फिल्म का शौक़ और इश्कबाज़ी !!
मैं सर पर यह सब बोझ, क्योंकर उठाऊँ ?
मैं इस डेढ़ आने में क्या क्या बनाऊँ !!

ज़रूरी यहाँ सिगरेट और पान भी है,
अदालत में जाने का इमकान भी है !
है भङ्गी भी धोबी भी दरबान भी है,
और एक साड़ी वाले की दूकान भी है !!
कहाँ जाऊँ, किस किस से पीछा छुड़ाऊँ ?
मैं इस डेढ़ आने में क्या-क्या बनाऊँ !!

हैं मेले-ठेले और त्यौहार भी हैं,
हम मौके पर ऐसे ख़ुद्दार भी हैं।
बहुत ख़र्च करने को तैयार भी हैं,
बला से जो बे-बर्ग व बे-बार भी हैं!
किसे दास्ताने-मसारफ सुनाऊँ ?
मैं इस डेढ़ आने में क्या-क्या बनाऊँ ??

—हीज लक़लक़

रह गया अब काम ये शेख़ो-बरहमन् के लिए!
माँगते फिरते हैं चन्दा आज 'नेशन' के लिए!
राहिये यूरोप हुए मुँडवा के दाढ़ी शेख़ जी!
बिस्तरे पर लग गया लेबिल भी लण्डन के लिए!
बरहमन की शुद्धताई, पे भी पानी फिर गया!
'इस्तिरी' धोबी की थी, मरते थे धोबन के लिए।
आज पण्डितजी का सङ्कट ख़ूब मोचन हो गया!
जा रहे थे जेलखाने एक मोचन के लिए!
अपने जामे में समाता ही नहीं जोशे-शबाब!
थान पूरा चाहिए, बया तेरे जोबन के लिए!
हो गया कालेज में उनका 'शेख़ सादी' का कलाम
कुर्सी ख़ाली कर दी 'हाफ़िज़' ने भी मिल्टन के लिए!
ख़ूने दिल हाज़िर है, मेरा लीजिए बन्दा-नवाज़!
रङ्ग कब पक्का मिलेगा ऐसा 'टर्न' के लिए?
एक है माशूक़ जिसके सैकड़ों उश्शाक़ हैं!
चाहिए माशूक़ की पल्टन भी पल्टन के लिए!
उनको शिकवा है कि ख़ाली हो गया इनका 'विज़िट'!
नक़द दिल की फीस नाकाफ़ी थी सर्जन के लिए।

लख्ते दिल खाओगे 'पण्डितजी' किसी के इश्क में;
हिन्दू होटल खुल गए हैं, शुद्ध भोजन के लिए!
देख कर वायज को आते, मैपरस्तों ने कहा!
'आरिया' आता है शायद कोई 'खण्डन' के लिए!!

—आसी

× × ×

जङ्गे आजादी हमारी ऐन फ़ितरत हो गई;
मुस्तकिल जद्दो-जेहद की अब तो आदत हो गई!
जो फ़िज़ा यूरोप में थी, वह हिन्द पर भी छा गई;
रफ्ता-रफ्ता उनकी सूरत मेरी सूरत हो गई!
जब से अपनी जिन्दगी पाबन्दे उल्फत हो गई;
रञ्जो-ग़म से साथ ही, साहब-सलामत हो गई!
वह गले से जो मिले, ईदे-मोहब्बत हो ग़ई!
एक नए अन्दाज से ताईदे उल्फत हो गई!
आँख ने तसवीर खींची, दिल में उतरी, जम रही;
गोया नक्शे कलहजर अब उनकी सूरत हो गई!
हुस्न छिपता है छिपाने से कहीं जेरे नकाब,
लाख पर्दों से भी जाहिर उनकी सूरत हो गई!
अल्ला-अल्ला हर घड़ी कामिल तसव्वर का असर,
रफ्ता-रफ्ता उनकी सूरत मेरी सूरत हो गई!

—कामिल

× × ×

बुढ़ापे में नए सर से बला जो हमने पाली है,
इसी से बैठते-उठते हमारी गोशमाली है!
न रुक्का कोई नाजायज, न कोई नोट जाली है,
मगर जानिए क्यों रुपयों की कहतसाली है!!

हमारे घर की रौनक, एक साला एक साली है,
वह कितना सीधा-सादा है, यह कितनी भोली-भाली है
नहीं मालूम, कितने चिकनी मिट्टी पर फिसल जाते,
ग़नीमत जानिए, जो घर की देवी अपने काली है !!
दिया करती है कच्चे-पक्के अण्डे आठवें-दसवें,
अजब मुर्ग़ी जनावे शेख, तुमने घर में पाली है !
यह जिसके इन्ट्रोडक्शन के लिए है रतजगा घर में,
वह मेरी जाँची-परखी है, वह मेरी देखी-भाली है !!
फटे पड़ते हैं दामानो गरीबाँ ईद मिलने को,
मियाँ ईदू ने भी क्या ईद में अचकन निकाली है !
यह पाकिस्तान की स्कीम, है नापाकए 'शातिर'!
निगाहे सरसरी क़ुरआन पर हमने भी डाली है !!

—शातिर इलाहाबादी

× × ×

गुलज़ार में आया मौसिमे-गुल; अल्लाह रे जवानी फूलों की !
अब फूल के बुलबुल कहती है, फूलों से कहानी फूलों की !
सैयाद के घर में कहता है, यूँ कोई कहानी फूलों की;
जाँची, परखी, देखी-भाली; मैंने भी जवानी फूलों की !
रह जायगी कहने-सुनने को, गुलशन में कहानी फूलों की;
कै रोज़ यह आलम फूलों का, दुनियाँ है यह फ़ानी फूलों की ?
जब मौसिमे-गुल का ज़िक्र आया, तो अश्क बहाए गुलचीं ने !
तस्वीर की सूरत फिरने लगी, आँखों में जवानी फूलों की !!
ऐ बादे-खिज़ाँ, यह जुल्मो-सितम, पत्ते भी अलग शाखें भी जुदा !
गुलशन में न रहने पाएगी, क्या कोई निशानी फूलों की ?
गुलचीं भी मुख़ालिफ़, सरसर भी ! कुछ बस नहीं चलता बुलबुल का
मिट्टी में मिलाई जाती है, पुर जोश जवानी फूलों की !!

वह महफ़िले गुल बाक़ी न रही, वह अहले चमन बाकी न रहे!
अब कौन सुनाएगा हमको, दिलचस्प कहानी फूलों की?
बुलबुल के मुक़द्दर से बेशक तक़दीर इसी की अच्छी है;
चल फिर से सबा ही चूमती है, क्या क्या पेशानी फूलों की!
गुलशन में न क्यों कर दिल बहले, वह सुनते हैं मैं सुनता हूँ;
फूलों से फ़िसाना बुलबुल का 'बुलबुल से कहानी फूलों की!
मजमून के गुल क्यों कर न खिलें, 'बिस्मिल' फिर सफ़हए काग़ज पर?
सौ रंग से लिक्खी है तुमने, खुश-रङ्ग कहानी फूलों की!!

—बिस्मिल इलाहाबादी

× × ×

देखते ही देखते वह बुत सितमगर हो गया!
जब से उसने नाज सीखे, रश्के हिटलर हो गया!!
बाद उसकी अश्क-आवर गैस बन कर रह गई!
यक-बयक बेहोश बेखुदे-दिल का "बरकर" हो गया!!
उसकी रफ़अत और हमारी बेकसी का रंग देख!
हम अभी रँगरूट हैं, दुश्मन 'कमाण्डर' हो गया!!
पहले खाते थे हवा, अब वह भी उसके बस में है;
शोमए-किस्मत, वह तय्यारों का अफसर हो गया!!
कश्तिए दिल गुम है 'अनम' का तारपीडो देख कर!
जिन्दगी कावह, रोमाँ का समुन्दर हो गया!!
आलमे उम्मीद के चुपचाप टुकड़े कर दिए।
दिल हमारा दिल था, लेकिन अब सिकन्दर हो गया!!
यह भला 'जंगी-कमेटी' है कि बज़्मे-इश्क है;
शेख जी भी झुक गए; पण्डित भी मेम्बर हो गया!!

आज तक इसकी सियासी-शायरी की धूम थी;
अब 'क़मर' भी पैरवे-अन्दाज़ 'अकबर' हो गया !!

—क़मर जलालाबादी

दिल से ज़ाहिद भी तमन्नाई हो मयख़ाने का,
भेद आए जो समझ में कभी पैमाने का !
दिल को है शौक़ फ़क़त आपके काशाने का;
ये न काबा का तलबगार, न बुतख़ाने का !
दिल समझते हो जिसे दिल नहीं दीवाने का;
एक छोटा-सा वो नक़शा है सनमख़ाने का।
क्या बलानोश को सामाने-तकल्लुफ़ से ग़रज़,
काम बोतल ही से मैं लेता हूँ पैमाने का।
छोड़ कर घर को मिली चर्खे-सितमगर से नजात;
अब ये कुछ कर नहीं सकता मेरे वीराने का !
है ख़ुदा एक तो फिर तू ही बता दे ज़ाहिद,
और कोई है ख़ुदा क्या मेरे बुतख़ाने का ?
शम्अ के हाथ में गो मौत का परवाना है,
लेकिन इस पर भी वही शौक़ है परवाने का।
तुम कहाँ बैठ गए हज़रते ज़ाहिद उट्ठो।
ये तो मस्जिद नहीं, दर्वाज़ा है मयख़ाने का।
और बढ़ता है जुनूँ क़ैस का क़िस्सा सुन कर;
ज़िक्र अच्छा नहीं दीवाने से दीवाने का।
सिजदए-काबा करें सोच-समझ कर ज़ाहिद;
इसकी बुनियाद में पत्थर न हो बुतख़ाने का।
ज़िन्दगी में जिसे तुम कहते थे 'क़ुरता' अक्सर,
है सरे-राह ये मदफ़न उसी दीवाने का।

—'क़ुरता' गयावी

कालोंके विपक्षमें

काले नाहीं मीत किसी के, काले नाहीं मीत !
काली रात दुखों का कारन, काली कोयल सुख की वैरिन !
काले भौंरे नित कलपाएँ, गा कर पी के गीत ॥
किसीके काले नाहीं मीत !
काले केश सँवार के मैंने, काला सुरमा डाल के मैंने।
काले श्याम से नैन लगाए, भाग हुए विपरीत ॥
किसीके काले नाहीं मीत !
काली पुतलियाँ नीर बहाएँ, बावरी कर दें काली घटाएँ।
दुखियारों को व्याकुल करना, कालों की है रीत ॥
किसीके काले नाहीं मीत !
काले काग के सगुन हैं काले, धीर बँधा कलपाने वाले।
कालों के विश्वास पे सजनी, हार समान है जीत ॥
किसीके काले नाहीं मीत।
काले नाहीं मीत किसी के, काले नाहीं मीत।

—"शान्त"

कालोंके पक्षमें

काले सबके मीत हैं मूरख,
काले सबके मीत !
जब तक काले केश थे मेरे, तब तक पी थे दास।
आई सफेदी जब से उन पर, वह नहीं आए पास ॥
हार हुई या जीत रे मूरख।
काले सबके मीत ॥

काले-काले नयनों में जब, काला अञ्जन पड़ता।
उन नयनों के दर्शन को, पी पाँवों पे सर धरता॥
हार हुई या जीत रे मूरख।
काले सबके मीत॥
काली कोयल कू-कू का जब, बन में राग सुनाती है।
कू-कू सुन कर उसकी पी को, याद मेरी आ जाती है॥
हार हुई या जीत रे मूरख।
काले सबके मीत॥

—'वली'

बात ही जब मेरी नहीं सुनते,
फिर कहूँ ख़ाक मुद्दआ दिल का।

—'सअद' बिजनौरी

रंजो-ख़ुशी में एक अगर, दिल हो मुतमईन,
यानी ख़िज़ाँ में देखते हैं, हम बहार को।

—'आग़ा' इलाहाबादी

हर पंखड़ी थी ख़ुद दबक़ आमोजे ज़ख्ते-इश्क़,
बुलबुल न समझी फिर भी ज़बाने-बहार को।

—'तफ़्ता' राजापुरी

तीरे निगाहे नाज़ का अन्दाज़ देखना,
आँखों से उनकी चल के मेरे दिल में रह गया।

—'सफ़ीक़' भरतपुरी

आए, तुम और खिल गए, ज़ख्मे दिलो-जिगर,
देखोगे इस बहार को, या उस बहार को?

—'रञ्जी' नगरामी

लाई है बूए गुल जो असीरे-क़फ़स के पास,
दो सैकड़ों दुआएँ, नसीमे-बहार को!

—'हमदम' अकबराबादी

"हसमत" गए जो राज़-तख्त, उसका ग़म है क्या,
किसने जहाँ में देखा, हमेशा बहार को।

—'हसमत' राजापुरी

ग़म ने तसल्लिए दिले-वहशी के वास्ते,
नश्तर बना दिया, रगे अब्रे-बहार को।

—'असर' लखनवी

कौन था किसकी अदाये शोख़दिल को ले गई,
कौन था, किस शोख़ ने, या रब किया बेदिल मुझे।
इब्तिदाये इश्क़ में इस दर्जा यह बेताबियाँ,
देखिये दिखलायेगा क्या क्या अभी यह दिल मुझे।

—बशीर फ़रुख़ाबादी

सीने से खींचते हैं, दिले-दाग़दार को,
शायद निकाल देंगे, चमन से बहार को।
ख़ूने ग़मे फ़िराक़ से, है रंगे दाग़े-दिल,
फ़स्ले-ख़िज़ाँ से, मोल लिया है बहार को।

—'बेखुद' इलाहाबादी

दिल मेरा दाग़े-इश्क से, खुद लालाज़ार था,
क्या देखता चमन में, गुलों की बहार को।
मातम के दाग़ दिल में हैं, दामन है चाक-चाक,
या रब, यह किसका ग़म है, उरूसे-बहार को?

—'अफ़स' राजापुरी

हर दाग़ दिल का फूट के, नासूर हो गया,
आता है जी में आग लगा दूँ बहार को।

—आक़िल लाहौरी

अब अन्दलीबे-जार की हालत न पूछिए,
मुद्दत हुई कि रो चुकी, फ़स्ले बहार को।

—शमसी इलाहाबादी

तौबा तो मै-परस्ती से, ऐ "राज़" की मगर,
दिल क्या करेगा देख के अब्रे-बहार को।

—'राज' लखनवी

क्यों ख़ाक में तुम मुझको मिलाते हो सबब क्या,
दिल में मेरी जानिब से कुदूरत तो नहीं है!

—'रफ़ीक़' क़ायम गञ्जवी

तीर को तुम क्या करोगे तीर को रहने भी दो,
ताकि कुछ मालूम हो अन्दाजे ज़ख्मे दिल मुझे।

—हामिद इटावी

सय्याद हँस के कहता है, होगा क़फ़स हरा,
बुलबुल असर से लेती है, नामे-बहार को।

—'शफ़ीक़' लखनवी

उल्फ़त में रंग लाए हैं, मिट कर जिगर के दाग़,
उजड़े हुए चमन की भी, देखो बहार को।
आँखें खुली न थीं, कि असीरे-क़फ़स हुए।
हम देख भी सके न, चमन की बहार को॥

—'सज्जाद' राजापुरी

राहे उल्फ़त में नज़र आती नहीं मंज़िल मुझे,
अब खुदा जाने कहाँ ले जाय मेरा दिल मुझे।
जब से हाथ आया हज़ारों ग़म हुए हासिल मुझे,
कोई वापस कर गया यह कह के मेरा दिल मुझे।
शुक्र करता हूँ कि समझा तुमने इस क़ाबिल मुझे,
क्या कहा फिर तो कहो देदो तुम अपना दिल मुझे।
बेसबब ज़िक्रे वफ़ाओ इश्क करता है कोई,
आप चाहें या न चाहें चाहता है दिल मुझे।

—ग़नी इलाहाबादी

क्या क़यामत की है यह भूल-भुलैयाँ दुनिया,
ढूँढ़ते फिरते हैं मिलता नहीं रास्ता कोई।
जिसको देखा वह है अपनी ही ग़रज़ का बन्दा,
हक़ तो यह है नहीं दुनिया में किसी का कोई।
पूछता फिरता हूँ मैं उसकी दिखा कर तस्वीर,
मुझे बतलाओ कहीं देखा है ऐसा कोई?

—'अकबर' दानापुरी

जवाँ जब ज़ोर पर आते हैं, सिगरेट फूँक देते हैं।
इसी जङ्गो-वदल को जङ्ग का सामान कहते हैं॥
इधर कुर्की पे कुर्की हो, उधर फ़ाक़े पे फ़ाक़ा हो।
इसे अस्बाबे-महफ़िल शान का सामान कहते हैं॥
क्लब में रोज घण्टों खाने-पीने बैठने वाले।
नमाज़ो-बन्दगी को वक्त का नुक़सान कहते हैं॥
जो बन-ठन कर कशीदे काढ़ती है, वह तो बीवी है।
जो बरतन साफ़ कर दे, उसको अम्माँ जान कहते हैं॥
उठो लड़को नहीं होगा, पढ़ो लड़को नहीं होगा।
कहे अच्छा जियो तुम, उसको अब्बा जान कहते हैं॥

करो हिन्सा, करो चोरी, करो सेवा, करो भगती ।
मगर मन्तर भी ले रक्खो, गुरू भगवान कहते हैं ॥
बड़ी मेहनत से सरदी-धूप सह कर, रञ्जो-ग़म खाकर ।
हमें अजनास देता है, उसे देहक़ान कहते हैं ॥
कभी तालीम की, कर्ज़ोलगान और भूक की मौजें,
उठें जब बहरे-गुरबत में, उसे तूफ़ान कहते हैं ॥
गरीबों आजिज़ों, मिस्कीनों, नंगे, भूख से लागर,
जो अर्जी दें तो ठुकरा दे, उसे दरबान कहते हैं ॥
लियाकृत काबलीयत, मेहरबानी सब,
बटें भरपाय में जिसके, उसे दीवान कहते हैं ॥
जमीं उनकी, दुकाँ उनकी, कलम उनका, जुबाँ उनकी ।
अभी तक कॉङ्ग्रेस वाले जिन्हें मेहमान कहते हैं ॥
गवाह ने सादगी से बे-गुनाह तकसीर यों कर दी ।
कसम खाने की जो शै है, उसे कुरआन कहते हैं ॥
मोहज्जब और मोजिज और मुवकलिन यार सब अपने,
बराबर हजरते 'पागल' को बेइमान कहते हैं ॥

—'पागल'

नए फैशन की बीबी का, थियेटर देखते जाओ;
मियाँ के कान खिंचते हैं, ये मनजर देखते जाओ ।
कभी झुकते हुए देखा न होगा, तुमने शौहर को;
उचक कर ये भी तुम इस घर के अन्दर देखते जाओ ।
मियाँ होते हैं खुश, जब गालियाँ बीबी की सुनते हैं ।
बने शौहर भी क्या 'कॉमिक के जोकर' देखते जाओ ॥
कभी औरत यहाँ मशहूर थीं शौहर परस्ती में ।
यहाँ सब बूट की देती हैं ठोकर देखते जाओ ॥

गया पर्दा हमेशा को, बस अब अल्ला ही अल्ला है।
फिरेंगे बेमहाबा घर से बाहर, देखते जाओ॥
कहा बीबी ने शौहर से, कहाँ थे ? इस तरफ़ आओ।
फटाफट् कितने पड़ते हैं, सलीपर देखते जाओ॥
हुई पतलून ढीली, हैट छोड़ा और निकल भागे।
तआक़ब में है अब बीबी का हण्टर, देखते जाओ॥

—गुरु घण्टाल

क्या जानिए क्या हाल है याराने अदम का,
एक उम्र हुई है नहीं आई है ख़बर भी।
क्या ग़म है ख़िज़ाँ में जो नहीं ताकते- परवाज़,
निकलेंगी जो कलियाँ तो निकल आयेंगे पर भी।
फ़ुरक़त में अमीर ऐसी बरसती है उदासी,
रोते हैं मेरे हाल पै दीवार भी दर भी।

—'अमीर' लखनवी

चोटी में अपने उसने, जो गूँथा है हार को,
बाँधा है पेचे-ज़ुल्फ़ में, गोया बहार को।

—शौक़ इलाहाबादी

उम्मीद मेरी खंजरे क़ातिल में रह गई,
क्या क्या तड़प तड़प के मेरे दिल में रह गई।
बूये वफा जहाँ में कहीं नाम को नहीं,
जो कुछ भी थी वह सिर्फ मेरे दिल में रह गई।
हसरत निकल सकी, न निकाले से भी 'अजीज़',
यों वह दबी दबाई मेरे दिल में रह गई।

—अजीज़ मिर्ज़ापुरी

यह रंगे-गुल यह जलवए-गुल, यह जमाले-गुल,
सद आफरीं, करामाते अब्रे-बहार को।
यह इज़्तिराबे शौक तो, बुलबुल का देखिए,
वह चाहती है गोद में, ले लूँ बहार को।

—नूह नारवी

मेरे आँसू का हर कतरा मोहब्बत की निशानी है;
जो वह देखें तो मोती है, न देखें वह तो पानी है।
बक़ा दुनिया में है किस चीज को, हर चीज़ फ़ानी है;
यह हस्ती कुछ नहीं, दो साँस की बस एक कहानी है।
हक़ीक़त जिन्दगी की, मर के अब हमने यह जानी है;
तने ख़ाकी है फ़ानी, रूह लेकिन ग़ैर-फ़ानी है।
हम अपनी जिन्दगी को चलती-फिरती छाँह समझे हैं;
इसे एक रोज मिटना है, अजल एक रोज आनी है।
बहार आई, घटा छाई, करम कर मुझ पर ऐ साक़ी;
पिला दे फूल ऐसे में, कि फूलों पर जवानी है।
फ़ना होने को उलफत में, फ़ना होना नहीं कहते;
हक़ीक़त में बक़ा की दूसरी यह भी निशानी है।
रमूज़े आरज़ू को, आरज़ू वाले समझते हैं;
उमङ्गों का जमाना है, मोहब्बत की जवानी है।
वह क्यों सुनते नहीं दिल से, किसी दिन माजरा दिल का।
हक़ीक़त की हक़ीक़त है, कहानी की कहानी है।
बनाये 'नूह' के तूफ़ान-जोश-अंगेज से 'बिस्मिल'।
मेरे बहरे-सख़ुन में इस क़यामत की रवानी है॥

—बिस्मिल इलाहाबादी

कैदे-क़फ़स में आए थे जब हम, तो याद है,
कुछ रोज़ रह गए थे, शुरूए-बहार को।

—जिगर बिस्वानी

क्या तरब-खेज है पुर-लुत्फ़ हवा सावन की।
बढ गई फैल के हर सिम्त घटा सावन की॥
पाक-दामन भी नज़र आने लगे तर-दामन।
कर गई बारिशे-मै, आज घटा सावन की॥
दुख्तरे रज़ ने तुझे मुँह जो लगाया जाहिद ;
खुश नसीबी यह तेरी, खैर मना सावन की।
गिर पड़े आके न बुलबुल के नशे मन पे कहीं,
यह चमकती हुई बिजली है बला सावन की।
जुल्फ खोले हुए अपनी वह सेर-बाम आए,
घट गई शर्म वह नदामत से घटा सावन की।
छाई है गम की घटा, बहते हैं आँसू हरदम।
मैं तो सावन में भी तस्वीर बना सावन की।
बादाकश जाम पै अब जाम पिए जाते हैं।
भर गई उनके दिमागों में हवा सावन की॥
दे गया खिल्लते नौ बाग़ को क्या अब्रे बहार;
पहनी हर शाखे-गुले-तर ने क़बा सावन की।
जिन्दगी तुझ में नए सर से जो आई "कुश्ता"
यह मसीहाई है ऐ मरदे-खुदा सावन की।

—अवधकिशोर 'कुश्ता'

वह तसौअर में भी आ सकते नहीं,
परदादारी का यह आलम क्या कहूँ।

× × ×

कुछ खटकता तो है पहलू में मेरे रह रह कर,
अब खुदा जाने तेरी याद है, या दिल मेरा।

जिगर मुरादाबादी

× × ×

गुनाहों ने दिले-इन्सान में डेरा जमाया था;
जमीने-हिन्द पर अब्रे-सिया ग़म बन के छाया था।
फ़ज़ा तरीक थी, हर-सू क़यामत की सियाही थी।
जब इन्सानों की बस्ती में तबाही ही तबाही थी॥
दिले इन्सों में जब बाक़ी न था अहसासे-उलफत भी।
कशाकश में यहाँ जब पड़ गई थी आदमीयत भी॥
बुरा था नाम लेना, जब मुहब्बत का जमाने में।
मजा आता था जब जालिम को, बेकस के सताने में।
जहाँ में छा गई थीं ज़ुलमतें, बातिल-परस्ती की,
भरी थी रंगे-जुल्मो-जौर से, तस्वीर हस्ती की।
घटा छाई थी जब आकाश पर, कहरे-खुदा बन कर।
फिरा करती थी हरसू मासियत काली बला बन कर।
शबे-तारीक थी, दीवारो-दर भी काँप उठते थे।
बशर तो फिर बशर हैं, शेरे नर भी काँप उठते थे॥
भरी बरसात थी भादों की, और रात ऐसी काली थी।
कि डर कर चाँद ने बदली की चादर मुँह पे डाली थी।
तो ऐसे वक्त, भारतवर्ष का इक देवता आया।
खुलूस और प्यार का परकाश इसने आके फैलाया॥
अमल के रंगो-बू से जान आई इक गुले-तर में।
किया जलवा खुदा के नूर ने, इन्सों के पैकर में॥
जमीं का चप्पा-चप्पा उसके जल्वों से चमक उट्ठा।
फ़िज़ा रौशन हुई, चेहरा जमाने का दमक उट्ठा॥

मिटाया उसने बातिल को हुकूमत को जमाने से,
छुड़ाया उसने इन्सानों को ग़म के कैदखाने से॥
वह देखो हुस्ने-कुदरत ले के इस दुनियाँ में श्याम आया।
जमाने के लिए बनकर मुहब्बत का पयाम आया॥

—इब्नुल्हसन साहब 'फिक्री' एम० ए०

× × ×

देखना है बाग़ में क्या रंग लाती है बहार।
गुल खिलाने के लिए सुनते हैं आती है बहार॥
चहचहे बुलबुल के हैं या गीत गाती है बहार?
हँस रहे हैं फूल शायद मुस्कुराती है बहार॥
हम असीराने-क़फ़स को लुत्फ़ वह हासिल कहाँ?
दूर से बस सुन लिया करते हैं आती है बहार॥
साल भर के बाद दिल के ताते हो जाते हैं जख़्म।
क्यों असीराने-क़फ़स को छोड़ जाती है बहार?
कह दो बुलबुल से कि अब छेड़े तराने ऐश के।
बज़्मे-गुल आरास्ता है जगमगाती है बहार॥
नौ जवानाने-चमन क्या शाद हैं मसरूर हैं।
अब ख़िज़ाँ जाता है गुलशन से अब आती है बहार॥
होगी जिसके वास्ते होगी मसर्रत-बख़्श यह।
मुझको तो बस खून के आँसू रुलाती है बहार॥
रिन्द कहते हैं कि जाहिद को भी पीना चाहिए।
धूम से बागे जहाँ में आज आती है बहार॥

—ज़ाहिद इलाहाबादी

× × ×

ग़मे-दौलत में मर जाएँ शहादत हो तो ऐसी हो ॥
बनाएँ जाके घर यूरोप में जन्नत हो तो ऐसी हो ॥

न रक्खे हमसे उम्मीदे-वफा कोई मुसीबत में।
रफीक़ों और हमदर्दों से उल्फत हो तो ऐसी हो ॥

बुला भेजें या न भेजें हमें लेकिन जबरदस्ती।
हर एक महफिल में घुस जाएँ शराफत हो तो ऐसी हो ॥

अबस दैरो-हरम देते हैं हमको दावते-सिजदा।
दरे-साहब पे सर रगड़ें इबादत हो तो ऐसी हो ॥

दबाएँ जिस क़दर चाहें वह हमको उनकी मरजी है।
न आए लब तलक शिकवा तबीयत हो तो ऐसी हो ॥

दिलों में नाम तक का भी न हो अहसास आज़ादी।
गुलामी और महकूमी की चाहत हो तो ऐसी हो ॥

लड़ा कर हिन्दू-ओ-मुस्लिम को खुशनूदी करें हासिल।
नसीहत वाज और लेक्चर में ताकत हो तो ऐसी हो ॥

कहीं दो भाइयों को देखकर मिलता हुआ बाहम।
हसद से जल उठें शर से अदावत हो तो ऐसी हो ॥

घरों में छुपके ही पी लें न कोई देखने पाए।
मै मीना व साग़र से जो नफ़रत हो तो ऐसी हो ॥

बड़े साहब के दफ्तर से मिले तमग़ए-खुशनूदी।
वफादारी जिबेसाई रियाज़त हो तो ऐसी हो ॥

बहुत कुछ बूट चाटें और करें मिल्लत-फरोशी भी।
रहें महरूम फिर भी काबलियत हो तो ऐसी हो ॥

इधर स्टेज कौमी पर उधर साहब के बङ्गले में।
रहे दोनों जगह इज़्ज़त करामत हो तो ऐसी हो ॥

इधर पब्लिक को भड़काएँ कि हो किस ख़्वाब में वल्लाह ।
उधर साहब से फ़रमाएँ–'हकूमत हो तो ऐसी हो ॥

—'क्रान्ति'

× × ×

क्यों ऐ जुनून क्या कोई सामाँ नहीं रहा ?
दाढ़ी ही नोच ले जो गरेबाँ नहीं रहा ॥
दिखला के चोंच कैस ने नासेह से यह कहा—
ठेंगे से तेरे ! मेरा गरेबाँ नहीं रहा ॥
पहने रहा तसव्वरे-लैला का जाँघिया ।
मजनूँ जुनूँ में भी कभी उरियाँ नहीं रहा ॥
फैशन की कैंचियों ने निकाले हैं पेचो-ख़म ।
अब कोई जुल्फ भूल-भुलैया नहीं रहा ॥
दस्ते-जुनूँ उठे तो कहाँ दम ले; बैठ कर ?
अड्डा जुनूँ का था जो गरेबाँ नहीं रहा ॥
जब तुम हुए जवान तो हम पीर हो गए ।
हो ख़ाक वस्ल, वस्ल का इमकाँ नहीं रहा ॥
माना न भूत इश्क का सर पर चढ़े बगैर ।
लाहौल से भी दूर यह शैताँ नहीं रहा ॥
दस्ते-जुनूँ को खुश किया यह कह के क़ैस ने ;
हाज़िर लँगोट है जो गरेबाँ नहीं रहा ॥
रहता है मेरे खौफ से पहरा पुलीस का ।
जिस दर पे आज तक कोई दरबाँ नहीं रहा ॥
"इम्प्रूवमेण्ट" के दौर में निकली है यों सड़क ।
बाक़ी निशान कूचए-जानाँ नहीं रहा ॥

धूनी वहाँ रमाई है मजनूँ ने ऐ 'हकीम'।
अब तक जहाँ पे शोले-बयावाँ नहीं रहा॥

—हकीम

× × ×

आए थे जिस चमन से वह बर्बाद हो गया,
अब क्या क़फ़स में याद करें हम बहार को।
उतरे हैं सहने-बाग़ में फूलों के क़ाफ़िले।
नज़रें दिखा रहे हैं उरूसे बहार को।

—'चकबस्त' लखनवी

× × ×

जी चाहता है तोड़ के उड़ जाऊँ मैं क़फ़स,
करता हूँ याद जब कभी लुत्फ़े-बहार को।
वह क्या गए कि बाग़ में अब वह समाँ नहीं,
जैसे ख़िज़ाँ ने लूट लिया हो बहार को।

—'तरीक़' जौनपुरी

चारा साज़ों को बताना ही पड़ा दम तोड़कर
सख़्त मुश्किल किस तरह होती है आसाँ देखिए
हँसके फिर एक बार कहिए मुझको आशुफ़्ता मिज़ाज
मुस्कराकर फिर मेरा चाके गरीबाँ देखिए

—'बर्क़' शाहजहाँपुरी

× × ×

मौत भी आती नहीं यह शेख़ भी मिलता नहीं
अपनी मुश्किल किस तरह होती है आसाँ देखिए
खींचकर लाई अदम से मुझको दुनिया की तरफ़
अब कहाँ ले जाय यह उम्रे गुरेज़ाँ देखिए

चश्मे पोशी तालिबे दीदार से अच्छी नहीं
दिल में रह जाएगा घुटकर दिल का अरमाँ देखिए
—'विरयाँ' इलाहाबादी

× × ×

वह अयादत को भी आए हैं तो गेसू खोलकर
यानी जीते जागते ख्वाबे परेशाँ देखिए
—'वज्म' अकबराबादी

× × ×

आइए आकर सूए गोरे ग़रीबाँ देखिए
वे सरो सामाँ जो हैं उनका भी सामाँ देखिए
अश्क बनकर भी न टपके दीदए खूँ बार से
दिल के दिल ही में रहे 'वेदिल' का अरमाँ देखिए
—'वेदिल' इलाहाबादी

× × ×

उनके दामन की हवा आई चली बादे बहार
अब किसी गुल का भी साबित है गरेबाँ देखिए
—वेखुद' मोहानी

× × ×

खून हो-होकर निकलते दिल का अरमाँ देखिए,
मुश्किलें यों इश्क की होती हैं आसाँ देखिए
इक फ़क़त मजबूर है उसकी मशीयत से 'हसन'
वरना क्या-क्या कुछ नहीं करता है इन्साँ देखिए
—'हसन' इलाहाबादी

× × ×

हर साल हम क़फ़स में बड़ी हसरतों के साथ।
देखा किए हैं, आमदे फ़स्ले बहार को॥

—'एजाज' इलाहाबादी

मेहदी बँधी नहीं मेरे पाए-ख़याल में,
चाहूँ तो खींच लाऊँ गुज़श्ता बहार को।

—'यास' अज़ीमाबादी

सय्याद को मलाल हो और उसको इन्फ़आल,
हाँ हाँ मेरा सलाम न कहना बहार को।

—'बेखुद' मोहानी

मेरे लहू का जोश ख़बर दे रहा है ख़ुद,
सय्याद क्यों छुपाता है फ़स्ले-बहार को।

—'हुनर' लखनवी

बेफ़ैज़ क्यों कहूँ मैं चमने-रोज़गार को,
पीरी मिली ख़िज़ाँ को जवानी बहार को।

—'सफ़ी' लखनवी

पढ़ा भी बहुत और मेहनत भी की है,
मुसीबत उठाई मशक्क़त भी की है।
ख़यालात में अपने वसअत भी की है,
निछावर बुज़ुर्गों की दौलत भी की है।
बड़ी मुशकिलों से यह डिगरी मिली है।
बी० ए० पास होने की कितनी ख़ुशी है॥
नज़र जब हैं इसकी तरफ़ हम उठाते,
सनद के एक-एक लफ़्ज़ हैं गुदगुदाते।

कभी नाचते हैं कभी गुनगुनाते,
खुशी से नहीं हम हैं फूले समाते।
बड़ी मुश्किलों से यह डिगरी मिली है।
बी० ए० पास होने की कितनी खुशी है॥
उठाए बहुत लुत्फ कालेज में रह कर,
बड़ी मौज की इस समुन्दर में बह कर।
किनारे पै आए जो आजार सह कर,
तो रुखसत हुए नाखुदा से यह कह कर।
बड़ी मुश्किलों से यह डिगरी मिली है।
बी० ए० पास होने की कितनी खुशी है॥
कभी प्रिन्सिपल को न ऐबसेण्ट पाया,
कभी वार्डन ने न सूरत दिखाया।
कभी लेक्चरर ने हवाई उड़ाया,
कभी जुल्म दफ्तर के बाबू ने ढाया।
बड़ी मुशकिलों से यह डिगरी मिली है।
बी० ए० पास होने की कितनी खुशी है॥
कभी खुश्क रुख़सार पर रङ्ग-रौग़न,
कभी खोखले जिस्म पर सूट अचकन।
कभी शक्ले नव्वाब या शक्ले करज़न,
ग़रज हर तरह का रहा अपना फैशन।
बड़ी मुशकिलों से यह डिगरी मिली है।
बी० ए० पास होने की कितनी खुशी है॥
कभी सुबह को बैठ कर हाथ मलना,
कभी शाम की आरजू का मसलना।
कभी दिन का दिन आतिशे ग़म में जलना,
कभी रात की रात करवट बदलना।

बड़ी मुशकिलों से यह डिगरी मिली है !
बी० ए० पास होने की कितनी खुशी है ।

—शातिर इलाहाबादी

देखते ही तुझको यह क्या हो गया क़ातिल मुझे,
दिल को मैं रोता हूँ और रोता है मेरा दिल मुझे ।
बनते बनते मौत बन कर रह गईं बेताबियाँ,
होते होते हो गया हासिल सुकूने दिल मुझे ।
एक ही जंजीर में जकड़े हुए हैं हुस्नो इश्क़,
उनको करते हैं उदू बदनाम मेरा दिल मुझे ।
बच रहे कुछ तीर तरकश में सितम ईजाद के,
कोई ऐसे में बना जाए सरापा दिल मुझे ।

—'शमीम' जलेसरी

सय्याद ने रिहा न किया, अबकी साल भी,
देखा न अन्दलीब ने, फ़सले-बहार को ।

—'आज़म' करेवी

हसरत यही है, मेरे दिल दाग़दार को,
एक रोज आके देख लें, वह इस बहार को !

—'बाँके' देहरादूनी

पोरी में अब शबाब के वह वलवले कहाँ,
फ़स्ले-खिज़ाँ ने लूट लिया है बहार को !!

—सफ्दर मिर्ज़ापुरी

सन्नाटा-सा चमन में है, खोल अब क़फ़स का दर !
मुझको बहार रोती है, और मैं बहार को !!

—'क़ुदसी' जायसी

हो कशिश दिल में तो आ जाते हैं खिंचकर इस तरह,
गर न हो जज्बे मुहब्बत दिल में तो कुछ दिल नहीं।

—जरीह अमरावती

दिल हुस्न का दीवाना है, मालूम नहीं क्यों?
इस काबे में बुतख़ाना है, मालूम नहीं क्यों?
एक-एक तेरा दीवाना है, मालूम नहीं क्यों?
औसान से बेगाना है, मालूम नहीं क्यों?
जालिम की निगाहों में है, मालूम नहीं क्यों?
फ़र्ज़ाना भी दीवाना है, मालूम नहीं क्यों?
किन मस्त निगाहों का तसर्रुफ है चमन में;
जो गुल है वह पैमाना है, मालूम नहीं क्यों?
जाती है नजर आलमे-वहशत में जहाँ तक;
वीराना ही वीराना है, मालूम नहीं क्यों?
अब दिल में हमारे न रहा कैफ़े-मसर्रत;
सुनसान यह मयख़ाना है, मालूम नहीं क्यों?
तासीर मोहब्बत की दिलेजार से पूछो;
इशरतकदा ग़मख़ाना है, मालूम नहीं क्यों?
बदनाम न हो जाय कहीं हुस्न का जल्वा;
कुछ होश में दीवाना है, मालूम नहीं क्यों?
हैराँ हूँ तेरी काकुले-पुरपेच की उलझन!
अफ्साना-दर-अफ्साना है, मालूम नहीं क्यों?
क्या दिल में कोई हो गया नासूरे-मोहब्बत;
रिसता हुआ पैमाना है, मालूम नहीं क्यों?
देखे तो कोई गोरे-ग़रीबाँ का यह मंज़र,
बस्ती में भी वीराना है, मालूम नहीं क्यों?

'जिद्दत' किसी ख़ुद्दार को दीवाना बना कर;
अब हुस्न भी दीवाना है, मालूम नहीं क्यों!

—रहमतउल्ला ख़ाँ 'जिद्दत' इलाहाबादी

ऊपर जो कविताएँ उद्धृत की गयी हैं, उनमें यत्र-तत्र कविता तो है ही, किन्तु सर्वत्र ही भाषापर अधिकारका परिचय मिलता है। इन्हीं भावोंको लेकर खड़ी बोलीके आधुनिक कवि उतना प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकते जितना उर्दूके कवियोंने यहाँ किया है। इसका कारण यही है कि भाषापर उर्दू कवियोंने पूर्ण अधिकार रखा है; जीवनके प्रचलित मुहावरोंका प्रयोग करके उन्होंने कीचड़मेंसे कमलका विकास कर दिया है; उनकी भाषामें कृत्रिमता नहीं है, सरलता है, स्वाभाविकता है।

उर्दू काव्यका हिन्दी कवियोंपर प्रभाव

उर्दू शैलीके प्रभावके सम्बन्धमें हम अन्यत्र यह संकेत कर चुके हैं कि राजकीय आश्रयने सांसारिक लाभकी कामना करनेवालोंकी दृष्टिमें उसे विशेष रूपसे आकर्षक बना दिया था। ऐसे कवियोंकी कृतियोंमें उर्दू शैलीका अनुकरण भाषा-विकासकी स्वाभाविक रीतिसे प्रभावित नहीं देखा जाता। हिन्दीके कुछ प्राचीन और कुछ आधुनिक कवियोंकी रचनाएँ नीचे उपस्थित की जा रही हैं; उनमें पाठक देखेंगे कि अनुकरण (१) कहीं अरबी-फ़ारसीके तत्सम शब्दोंके प्रयोगतक सीमित है; (२) कहीं वह और आगे बढ़कर अरबी-फ़ारसी छन्दोंके प्रयोगतक वरिवर्द्धित हुआ है; (३) कुछ और आगे बढ़कर वह विदेशी भावोंको व्यक्त करनेकी ओर भी बढ़ा है और (४) कहीं तो वह पूर्ण रूपसे उर्दू शैली ही में निमज्जित हो गया है; उसने हिन्दीके स्वरूप को ही भुला दिया है। उर्दू शैलीकी सबसे बड़ी विजय यही है कि उसने हिन्दी कवियोंको इस हदतक आकर्षित किया। अनुकरणकी जिन चार अवस्थाओंका उल्लेख किया गया है, उनमें प्रथम विशेषता रघुनाथ बंदीजन, महाराज नागरीदास, प्रेमघन, किशोरीलाल गोस्वामी, हितैषी आदिकी रचनाओं में, द्वितीय विशेषता दीन, माधव शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद आदिकी रचनाओंमें तथा तृतीय और चतुर्थ विशेषता सीतल, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र आदिकी रचनाओंमें मिलेगी। हरिऔधजीने बह्रोंको हिन्दी छन्दोंके रूपमें ढालनेका प्रयत्न किया है। हाला-प्यालाका समावेश करनेवाले कवियोंने भाषा तो संस्कृत गर्भित रखी है, किन्तु उसमें भाव विदेशी हैं जो आर्य्य

संस्कृतिके विरोधी हैं; हितैषीजीने इस प्रवृत्तिका जिस प्रकार विरोध किया है; काँटे ही से काँटा निकालनेकी जो चेष्टा की है, उसे भी पाठक शिक्षाप्रद और मनोरंजक पाएँगे :—

"आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं,
दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी।
दरखत बेलि आसरे को कभी राखत ना,
दरखत ही के आसरे को बेलि पावैगी।
लायक हमारे जो था कहना कहा सो मैंने,
रघुनाथ मेरी मति न्याव ही को गावैगी।
वह मुहताज आपकी है आप उसके न,
आप कैसे चलो वह आप पास आवैगी।

—रघुनाथ बन्दीजन

× × ×

ए तबीब उठि जाहु घर अबस छुवै का हाथ।
चढ़ी इश्क की कैफ़ यह उतरै सिर के साथ॥
सब मजहब सब इल्म अरु सबै ऐश के स्वाद।
अरे इश्क के असर बिन ये सब ही बरबाद॥

—महाराजा नागरीदास

× × ×

कारन कारज ले न्याय कहै जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
जाहिद ने हक्क हसन यूसुफ अरहन्त जैन छवि बसी कहा॥
हम खूब तरह से जान गये जैसा आनँद का कन्द किया।
सब रूप सील गुन तेज पुंज तेरे ही तन में बन्द किया॥
मुख सरद चंद्र पर ठमसीकर जगमगैं नखतगन जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कनके रूप उदोती से॥

—सीतल

दिल मेरा ले गया दग़ा करके।
वेवफ़ा हो गया वफ़ा कर के।

हिज्र की शब घटा ही दी हमने!
दास्ताँ जुल्फ़ की बढ़ा करके।

वक्ते रहलत जो आये वालीं पर।
खूब रोये गले लगा कर के।

खुद बखुद आज जो वह बुत आया।
मैं भी दौड़ा खुदा खुदा कर के।

दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर
रो रहा है रसा रसा कर के।

—भारतेन्दु

× × ×

तिरछी त्योरी देखि तुम्हारी क्योंकर सीस नवाऊँ।
हौ तुम बड़े खबीस जानकर अनजाना बन जाऊँ।
हर्फ़ शिकायत जबाँ प आये कहीं न यह डर लाऊँ।
कहो प्रेमघन मन की बातें कैसे किसे सुनाऊँ।

—प्रेमघन

× × ×

वो बदखू राह क्या जाने वफ़ा को।
अगर ग़फ़लत से बाज आया जफ़ा की।
मियाँ आये हैं वेगारी पकड़ने।
कहे देती है शोखी नक्शे पा की।
पुलिस ने और बदकारों को शह दी
मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।

उसे मोमिन न समझो ऐ बिरहमन
सताये जो कोई ख़िलक़त ख़ुदा की।

—प्रतापनारायण मिश्र

× × ×

बाग़ की बहार देखो मौसिमे बहार में तो
दिले बुन्दलीप को रिझाया गुले तर से
हम चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में
तो भी लौ लगी ही रही माह के महर से।
आतिशे मुहब्बत ने दूर की कुदूरत को
बात को नबात मिली लज़्ज़ते शकर से
शंकर नतीजा इस हाल का यही है बस
सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से।

—नाथूराम शंकर

× × ×

धूल में धाक मिल गई सारी। रह गये रोब दाब के न पते॥
अब कहाँ दबदबा हमारा है। आज हैं बात बात में दबते॥
आज दिन धूल है बरसती वाँ। धुन बरसता रहा जहाँ सब दिन॥
रतन रतन से सजे रहे जिन के। बेतरह आज वे गये तन बिन॥
आज बेढंग बन गये हैं वे। ढंग जिन में भरे हुए कुल थे॥
बाँध सकते नहीं कमर भी वे। बाँधते जो समुद्र पर पुल थे॥
क्या बचाये न बच सकेगा कुछ। क्या चला जायगा हमारा सब॥
क्या गिरेंगे इसी तरह दिन दिन। क्या फिरेंगे न दिन हमारे अब॥
कर लगातार भूल पर भूलें। क्या रहेंगे सदा बने भोले॥
क्यों टले खोलते बना कोई। क्या खुलेंगी न आँख अब खोले॥

क्या बुरे से बुरे दुखों को सह। एड़ियाँ ही घिसा करेंगे हम ॥
क्या टलेंगे न पीसने वाले। क्या सदा ही पिसा करेंगे हम ॥
जो रहे आसमान पर उड़ते। आज उनके कतर गये हैं पर ॥
सिर उठाना उन्हें पहाड़ हुआ। जो उठाते पहाड़ उँगली पर ॥
हैं रहे डूब वे गड़हियों में। बेतरह बार बार खा धोखा ॥
सूखता था समुद्र देख जिन्हें। था जिन्होंने समुद्र को सोखा ॥
जो सदा मारते रहे पाला। वे पड़े टालटूल के पाले ॥
आज हैं गाल मारते बैठे। जंगलों के खँगालने वाले ॥
तप सहारे न क्या सके कर जो। मन उन्हीं का मरा बहुत हारा ॥
हैं लहू घूँट आज वे पीते। पी गये थे समुद्र जो सारा ॥
सब तरह आज हार वे बैठे। जो कभी थे न हारने वाले ॥
आप हैं अब उबर नहीं पाते। स्वर्ग के भी उबारने वाले ॥
पेड़ को जो उखाड़ लेते थे। हैं न सकते उखाड़ वे मोथे ॥
वे नहीं कूद फाँद कर पाते। फाँद जाते समुद्र को जो थे ॥
जो जगत-जाल तोड़ देते थे। तोड़ सकते वही नहीं जाला ॥
वे मथे मथ दही नहीं पाते। था जिन्होंने समुद्र मथ डाला ॥
हुन बरसता था, अमन था चैन था। था फला-फूला निराला राज भी ॥
वह समाँ हम हिन्दुओं के ओज का। आँख में है घूम जाता आज भी ॥
वे हमारे अजीब धुन वाले। सब तरह ठीक जो उतरते थे ॥
आज जो हैं कमाल के पुतले। कान उनके सभी कतरते थे ॥
जब रहे रात दिन हमारे वे। पाँव जब धाक चूम जाती है ॥
क्या रहे और तब रहे कैसे। अब न वह बात याद आती है ॥
हैं पटकते कलप कलप उठते। याद कर राज पाट खोना हम ॥
होंठ को चाट चाट लेते हैं। देख दिल का उचाट होना हम ॥
जो पड़े सिर पर, रहें सहते उसे। पर न औरों के बुरे तेवर सहें ॥
दिन बितायें चाब मूठो भर चना। पर किसी की भी न मूठी में रहें ॥

तब खरा रह गया कहाँ सोना। जब हुआ मैल दूर आँचें खा ॥
क्यों न मुँह की बनी रहे लाली। गाल क्यों लाल हो तमाचे खा ॥
क्या रहे और हो गये अब क्या। याद यह बार बार कहती है ॥
सोच में रात बीत जाती है। आँख छत से लगी ही रहती है ॥
मिल सकेगा सुख न वह धन धाम से। दुख न मेटेंगी मुहर की पेटियाँ ॥
तज सयानप कमनियों से किस लिये। ब्याह हम देवें सयानी बेटियाँ ॥
हैं बड़ी बात ही बड़ा करती। चाहिये सूझ बूझ बड़कों को ॥
हो सयाने करें लड़कपन क्यों। लड़कियाँ* दें कभी न लड़कों को ॥
लोग बेढंग बेसमझ हम से। मिल सकेंगे कहीं न ढूँढ़े से ॥
आप ही हम तबाह होते हैं। बेटियाँ ब्याह ब्याह बूढ़े से ॥

आप जो वे मर रहे हैं तो मरें।
क्यों मुसीबत बेमुँहों सिर मढ़ेंगे ॥
वे चेताये क्यों नहीं हैं चेतते।
जो चिता पर आज कल में चढ़ेंगे ॥
हो बड़े बूढ़े न गुड़ियों को ठगें।
पाउडर मुँह पर न अपने वे मलें ॥
ब्याह के रंगीन जामा को पहन।
बेइमानी का पहन जामा न लें ॥
छोकरी का ब्याह बूढ़े से हुए।
चोट जी में लग गई किस के नहीं ॥
किस लिये उस पर गड़ाये दाँत वह।
दाँत मुँह में एक भी जिस के नहीं ॥
जो कलेवा काल का है बन रहा।
वह बने खिलती कली का भौंर क्यों ॥

---

* बेटियाँ (?)

मौर सिर पर रख बनी का बन बना।
बेहयाओं का बने सिरमौर क्यों॥
छाँह भी तो वह नहीं है काँड़ती!
क्योंकि बन सकता नहीं अब छैल तू॥
ढीठ बूढ़े लाद बोझा लाड़ का।
क्यों बना अलबेलियों का बैल तू॥
तब भला क्या फेर में छबि के पड़ा।
आँख से जब देख तू पाता नहीं॥
तब छछूँदर क्या बना फिरता रहा।
जब छबीली छाँह छू पाता नहीं॥
दिन ब दिन है सूखती ही जा रही।
हो गई बेजान बूढ़े की बहू॥
जब कि दिल को थाम कर दूलह बने।
तब न लेवें चूस दुलहिन का लहू॥
चाहतें कितनी बहुत कुचली गईं।
क्यों न टूटी टाँग बूढ़े टेक की॥
एक दुनिया से उठा है चाहता।
और है उठती जवानी एक की॥
राज की, साज बाज, सज धज की।
है न वह दान मान की भूखी॥
मूढ़ बूढ़े करें न मनमानी।
है जवानी जवान की भूखी॥
निज लहू की देख कर सूरत लटी।
आँख में उसकी उतरता है लहू॥
आँख बूढ़े की भले ही तर बने।
देख रस की बेलि अलबेली बहू॥

—हरिऔध

अदा से देख लो दिलदार यह फ़स्ले बहारी है।
लगे दिल किस तरह अब तो निहायत बेक़रारी है॥
भला गुल को चमन को गुञ्चे को बुलबुलको क्या देखें।
यहाँ तो आँखों में छाई हुई सूरत तुम्हारी है॥
जरा सूरत दिखाने में भी तुम को शर्म आती है।
मुहब्बत इसको कहते हैं यही क्या शर्तें यारी है॥
पड़ें हम पाँव ज्यों ज्यों तुम हुए त्यों त्यों ख़फ़ा मुझपर।
मुक़द्दर इसको कहते हैं यहाँ हिम्मत ही हारी है॥
न खाते हैं न पीते हैं न रोते हैं न सोते हैं।
तुम्हारे इश्क़ में प्यारी अजब हालत हमारी है॥
सरक कर दूर क्यों सोती हो लिपटा लो गले प्यारी।
गए गर्मी के दिन अब आ गई फ़स्ले बहारी है॥
कहें हम क्या कि जो दिल पर गुज़रती है जुदाई में।
नहीं रोने से है फ़ुर्सत लबों पर आहो ज़ारी है॥
भला यों भी कोई आशिक़ से होता है ख़फ़ा जानी।
कि जो दिल में किया करता तुम्हारी यादगारी है॥
अगर मानो तो बेहतर है न मानो गर तो क्या चारा।
गले से आके लग जाओ यही उम्मेदवारी है॥
दिलो जाँ दीनों ईमाँ देके हम क़ुर्बान हो बैठे।
एवज़ में बस अता हमको हुई यह इन्तज़ारी है॥
उमड़ता है जो दिल तो सर झुकाकर देख लेते हैं।
किशोरीलालके दिल पर खिंची तस्वीरे प्यारी है॥

× × ×

मुझे चाहक सताते हो मेरे दिलदार होली में।
लगा लो प्यार से सीने से सीना यार होली में॥

बहार आई है गुञ्चे खिल रहे कैसे गुलिस्ताँ में।
सदा आती है बुलबुल की अजब सरशार होली में॥
जो मिलना है तो दिल को खोलकर मिल जाइए प्यारे।
मुरादें दिल की बर आएँ मेरी दो चार होली में॥
नहीं तो अब सही जाती नहीं, है वस्ल का सौदा।
नहीं कहते हि दम निकलेगा फौरन यार होली में॥
लबेरंगी नहीं दस्ते हिनाई ये नहीं लेकिन।
चढ़ा है खून आशिक़ का तुझे ज़िनहार होली में॥
पड़ी जबसे नज़र नामें पै मेरे उस परीरू की।
नज़र आने लगे खुशरङ्ग सब अशआर होली में॥
मिला बरसों में वह गुलरू गले में डालकर बाहें।
लिया बोसा किशोरीलाल ने सौ बार होली में॥

× × ×

लगा लो आ मुझे सीने से ऐ दिलदार होली में।
निकल जाये शबे फुर्कत का दिल से खार होली में॥
जमी है आज आँखों में खुमारी को लिये सुर्खी।
अबस गालों में मलवा लो गुलाल ऐ यार होली में॥
लबेशीरीं का बोसा अब मिले .फस्ले बहारी है।
लिपटकर एक शब करने तो दीजे प्यार होली में॥
सुभानअल्लाह क्या उभरा हुआ जोबन तुम्हारा है।
निसार इसपर हुआ जाता हूँ मैं सौबार होली में॥
चलो पीलें मये गुलरंग बाहम आज गुलशन में।
लिये सागर है साक़ी हाथ में दो चार होली में॥
चहकते हैं हज़ारों बुलबुलो कोयल गुलिस्तां में।
मचाया है परिन्दों ने भी क्या चहकार होली में॥

मुकरते ही चले जाते हो पर अब मान लो कहना।
मिले बस एक बोसा, गर नहीं दो चार होली में॥
हिनाई दस्त जोड़ा, सुर्ख़ जोड़े से मिला जोड़ा।
किशोरी, लाल ये आँखें हुईं सरशार होली में॥

× × ×

हुआ है हुस्ने सनम का ख़याल होली में।
नहीं है जिसका जहाँ में मिसाल होली में॥
नशे में सुर्ख़ हैं आँखें ज़रा सँभल के चलो।
नई चला है क़यामत है चाल होली में॥
लिये हैं किसने लिपट कर हज़ारहा बोसे।
कि हैं गुलाल से पट सुर्ख़ गाल होली में॥
गदाए हुस्न हूँ ऐ रश्के चमन सुनता है।
है एक बोसे का अपना सवाल होली में॥
भला ये गालियाँ देते हो किया क्या मैंने।
बराहे इश्क़ न चाहूँ विसाल होली में॥
हुए जाते हैं रक़ीबों के ख़ून ग़ैरत से।
लगाते जब हो मुझे तुम गुलाल होली में॥
चलाये कुमकुमे उस माहरू के सीने पर।
बिगड़ के बोला ये तेरी मजाल होली में॥
लटों को खोल के रुख़ को छिपाये जाते हो।
कमर पै डाला है सुम्बुल का जाल होली में॥
किसी बेरहम के गले पर न फेर ऐ क़ातिल।
नियामें नाज़ से ख़ंजर निकाल होली में॥
शराबे वस्ल का सागर पिलाइए अब साक़ी।
कहा है पीरों ने मय को हलाल होली में॥

किया है शौख़ ने सीने लगा हम बिस्तर।
किशोरी लाल के दिल को निहाल होली॥

—किशोरीलाल गोस्वामी

×   ×   ×

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चाँदनी।
खोजती फिरती है किसको आज घर घर चाँदनी॥
घन घटा घूँघट हटा मुसकाई है कुछ ऋतुशरद्।
मारी मारी फिरती है इस हेतु दर दर चाँदनी॥
रात की तो बात क्या दिन में भी बनकर कुंदकास।
छाई रहती है बराबर भूमितल पर चाँदनी॥
खेत सारी युक्त प्यारी की छटा के सामने।
जँचती है ज्यों फूल के आगे है पीतर चाँदनी॥
स्वच्छता मेरे हृदय की देख लेगी जब कभी।
सत्य कहता हूँ कि कँप जायेगी थर थर चाँदनी॥

—दीन

×   ×   ×

मेरी जाँ न रहे, मेरा सर न रहे, सामाँ न रहे, न ये साज रहे
फक़त हिन्द मेरा आज़ाद रहे माता के सर पर ताज रहे
पेशानी में सोहे तिलक जिसके, औ गोद में गान्धी विराज रहे
न ये दाग़ बदन में सुफेद रहे, न तो कोढ़ रहे न ये खाज रहे
मेरे हिन्दू मुसल्माँ एक रहें, भाई भाई सा रस्मोरिवाज रहे
मेरे वेद पुरान कुरान रहें, मेरी पूजा रहै और नमाज़ रहे
मेरी टूटी मड़ैया में राज रहे, कोई ग़ैर न दस्तंदाज़ रहे
मेरी बीन के तार मिले हों सभी, एक भीनी मधुर आवाज रहे
ये किसान मेरे खुशहाल रहे, पूरी ही फ़सल सुखसाज रहे
मेरे बच्चे वतन पै निसार रहें, मेरी माँ बहनों में लाज रहे

मेरी गायें रहें, मेरे बैल रहें, घर घर में भरा नित नाज रहे।
घी दूध की नदियाँ बहती रहें, हरसू आनन्द स्वराज रहे॥
"माधो" की है चाह खुदा की कसम, मेरे बाद वफात ये बाज रहे।
गाढ़े का कफन हो मुझपे पड़ा, वन्देमातरम् अलफाज रहे॥

—माधव शुक्ल

× × ×

साक़ी मन घन गन घिर आये उमड़ी श्याम मेघमाला।
अब कैसा विलम्ब तू भी भर भर ला गहरी गुल्लाला॥
तनु के रोम रोम पुलकित हों लोचन दोनों अरुण चकित हों।
नस नस नव झंकार कर उठे हृदय विकम्पित हुलसित हो॥
कब से तड़प रहा हूँ, खाली पड़ा हमारा यह प्याला॥

—नवीन

× × ×

झूठी दुनिया में पा न सके जो, वह हम पाने आए हैं।
साक़ीशाला के द्वारे पर हम प्यास बुझाने आए हैं॥
सच्चाई में मत ढोंग मिला, नर तन का क्षणिक सुयोग मिला।
वासना रोग कर नाश अरे! संभोग मध्य तू योग मिला॥
दुखिया है सब संसार सदा, सुखिया का मैं आधार सदा।
जिसकी लौ मुझमें लगी हुई, है वह अपना जग से न्यारा॥
कहता मलिक साक़ीशाला।
नभ में जब घनघोर उठा, वन में हो नर्तित मोर उठा।
प्रियतम की साक़ीशाला से आओ-आओ का शोर उठा॥
युग युग के भूले भटकों को हम राह बताने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

उज्ज्वल निशि-अञ्चल छोर हुआ, उज्ज्वल प्राची में भोर हुआ।
कज्जल के कोठे में उज्ज्वल-रहना बन्दे ! यह शोर हुआ॥
मल धो करके, निर्मलता से घट पूर्ण बनाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

है सदा यहाँ आवास नहीं, पूरी होने की आस नहीं।
जलते उर की जग के जल से-है बुझने वाली प्यास नहीं॥
हम उपनिषदों में कथित "रसो वै स" को पाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

जो पोथी पत्रे छोड़ रहे, मंदिर मस्जिद को तोड़ रहे।
जो मदिरालय की चौखट पर-अपने मत्थे हैं फोड़ रहे॥
धर्मचर, सत्यंवद, उनको इतना सिखलाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

औंधी मुल्ले से रार करो, ठग पण्डे से तकरार करो।
सच्चा पण्डित मिल जाए तो उसको भी जी से प्यार करो॥
मधु में मक्खी जो फँसी उसी की बन्दि छुड़ाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

क्या आशा और निराशा क्षण ? किसका कहता नश्वर जीवन ?
लख अलख निवासी अमर रूप अपना, क्यों करता है क्रन्दन ?
करतल-गतवत् निर्द्वन्द्व सच्चिदानन्द दिखाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

प्याले पीने पर लाज भली, छिपकर पीने पर लाज भली।
दुष्कर्मों को दुष्कर्म समझ, कुत्सित जीने पर लाज भली॥
है मृतक भले निर्लज्जों से—जो जग भरमाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

पाना है सागर कासे में, पानी है नद में नाले में।
उसका पानी मर गया जो कि-"अपनत्व" डुबाता प्याले में॥

जिनमें है पानी शेष उन्हीं को हम अपनाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आये हैं॥

अपवर्ग सत्य, पर च्युतकारी, सुख-वर्ग सत्य, पर च्युतकारी।
जीवों का आवागमन सत्य-स्वर्ग सत्य, पर च्युतकारी॥
सुख-स्वर्ग, दुख-नरक के भ्रमता, भय, आज छुड़ाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

अघ-आलय तीर्थ नहीं होगा, वेश्यालय तीर्थ नहीं होगा।
शत शत गङ्गा धोएँ तो भी, मदिरालय तीर्थ नहीं होगा॥
है आत्मप्राप्ति ही तीर्थ, जहाँ सब को पहुँचाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

क्या बन्धन, मुक्ति और हस्ती ? है कौन मस्त ? कैसी मस्ती ॥
जो लोग "फना फिल्लाह" हुए, हस्ती को क्या समझें हस्ती ?
हस्ती, मच्छर, पर्वत, पत्थर, सब एक बुझाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

मैखाना है न कहीं गुम है, साकी सागर सब ही तुम हैं।
ताड़ीवाले हैं ताड़ गए, दुनिया है और न हम-तुम हैं॥
सपना अपना, अपना सपना करके दिखलाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

क्या चिरजीवी हो मधुशाला, क्या चिरजीवी हो मधुबाला ?
दुनिया की उलटन-पलटन में, आबाद रहे क्या मधुशाला ?
है रामनाम ही सत्य, उसी की याद दिलाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

घट पै घट है तूने ढाला, दरिया का दरिया पी डाला।
अनबूझ पहेली बूझ नहीं-मिटती, आशा-तृष्णा-ज्वाला॥
ज्ञानामृत का ले बूँद तुझे, कृतकृत्य बनाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

वह शोहरए आफाकी न रहा, सागर न रहा, साकी न रहा।
बदमस्तों की महफिल में तो, अब कोई भी बाकी न रहा॥
उलझी है तेरी अक्ल-गिरह, उसको सुलझाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आये हैं॥

सपना ऐ चञ्चल देख चुका, भावुकता का फल देख चुका।
मधुशाला जिसको समझा था, मृगतृष्णा का छल देख चुका॥
पछतानेवाले को ही तो हम कण्ठ लगाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं॥

—हितैषी

× × ×

यहाँ लगा रहता है हरदम आना जाना।
किन्तु भीड़ है वहीं, वही है रोना गाना॥
कुछ तो हँस हँस कर, पीते हैं कुछ रो रो कर।
कुछ करते पर उनका चलता नहीं बहाना॥
देखो, मेरी मधुशाला है कितनी सुन्दर?
पीने वालों का मेला है लगा निरन्तर॥
इच्छा ही या नहीं यहाँ का नियम यही है।
आकर पीना ही पड़ता है इसके अन्दर॥
जग-मधुशाले में पंडित जी! भूल न आना।
पीना होगा यहाँ, चलेगा नहीं बहाना॥
विष हो या हो हाला चुपके पीना होगा।
संभव नहीं कदापि यहाँ आकर बच जाना॥
जलती है मेरे उर में वह भीषण ज्वाला।
कभी चूमता, कभी फेंक देता हूँ प्याला॥
कभी ठिठक कर खड़ा, कभी बढ़ कर मैं आगे।
गिर गिर पड़ता, देख देख तम-मय मधुशाला॥

मेरी अपनी छोटी सी है उर-मधुशाला।
जिस में मैं साक़ी हूँ मैं ही पीने वाला॥
पंडित जी! मेरा पंडित-मन तो कहता है।
चिन्ता तज, पीते जाओ प्याले पर प्याला॥
थको न ढाले जाओ बस प्याले पर प्याला।
कल की चिन्ता करो न, देगा देने वाला॥
सब को चलना है, रहना है सिर्फ यहाँ पर।
साक़ी और हलाहल, हाला यह मधुशाला॥
छलक रही है साक़ी की आँखों में हाला।
देख देख कर बना उसे मैं पीने वाला
पीते पीते मुझे ध्यान हो रहा नहीं कुछ,
मैं मधुशाले में हूँ या मुझमें मधुशाला॥
भरी हुई है प्रिये तुम्हारे दृग में हाला।
कुल शरीर हो रहा तुम्हारा है मधुशाला॥
घेरे हैं उमंग के बादल सभी ओर से।
रोम रोम हो रहा हमारा है अब प्याला॥

—पद्मकान्त मालवीय

नीं पी मधुर मधु मधुप! बहक यों,
न चल कली को कुचल-कुचल कर;
करेंगे काटे न, जान लेंगे,
कठोर काँटे हृदय में हलकर॥ १॥
प्रथम हँसा मंजु गुंजनों से
न छल उसे अब मचल-मचलकर;
ई एक ही बूँद रस यहाँ अब,
बचा सकोगे नहीं निगलकर॥ २॥

मचल-मचल कर न चूस लो यों
मरंद सारा उथल-पुथलकर ;
विकस सकेगी कली कुँभल फिर
न दल दुबारा बदल-बदलकर ॥ ३ ॥
जो दो दिनों का मिला है यौवन,
विला न वह जाय हाय ! ढलकर ;
तनिक ठहर, झूम ले समुद वह,
मलय-पवन में उछल-उछलकर ॥ ४ ॥
मिटेगी मस्ती, निदाघ में चू
पड़ेगी वह खुद तपन में जलकर ;
कलप उठेगा, सतायगा जब
तुझे अरे अलि ! विरह विकल कर ॥ ५ ॥

× × ×

विहँस पड़ी हैं सुवर्ण-किरणें
बिखेर छवि की विचित्रताएँ ;
चटक-चटक फूल खिल पड़े हैं,
पुलक उठी हैं ललित लतायें ॥ १ ॥
महा मगन मन हुआ गगन में
चलो, चलें उठ खुशी मनाएँ ;
गुलाब-से, मेघ-से किरण में
पसार डैने चलो रँगाएँ ॥ २ ॥
जो दिन चढ़ेगा, बिगाड़ देंगे
प्रचंड रवि-कर सुघर छटाएँ ;
है जिन्दगी ही का क्या ठिकाना,
अभी वधिक-शर से मर न जाएँ ॥ ३ ॥

इसी से चलकर, मचल-मचलकर
चलो चहक लें खुशी मनाएँ;
फुदक-फुदक तरु की डालियों पर
चलो, घड़ी भर हँसें-हँसाएँ ॥ ४ ॥
बुला रही हैं विहँस के कलियाँ,
प्रणय के बन्धन से डर न जायें।
बने हैं बुलबुल, रगों में गुल के
चलो, बँधे पर, सिहर न जाएँ ॥ ५ ॥

× × ×

समझनेके लिए ये थोड़ेसे अवतरण ऊपर दिये गये हैं; इन अनुकरणोंमें हमारे भारतीय काव्यका ह्रास ही हुआ है। उर्दू शैलीकी अराष्ट्रीयता, अभारतीयतासे उत्पन्न होनेवाली प्रतिक्रियाके फल-स्वरूप सरल, संस्कृत तत्सम शब्दोंके सहयोगसे देश भाषाकी जो एक नवीन शैली कार्यक्षेत्रमें आ गयी उससे उर्दू शैलीकी स्पर्द्धा होना स्वाभाविक ही था। इस दृष्टिसे उर्दूके लिए यह गर्व और गौरवकी बात है कि आधुनिक हिन्दीकी संस्कृत-गर्भित शैलीने अनेक क्षेत्रोंमें उसका अनुकरण किया। इस अनुकरण-प्रवृत्तिका यह अर्थ है कि देशभाषाकी उक्त शैलीने भी जड़ें मजबूत नहीं पायीं और सहारेके लिए उर्दू शैलीकी ओर हाथ बढ़ा दिये। सच बात यह है कि एक ओर तो हमें उर्दू शैलीकी अस्वाभाविकताका त्याग करना है, दूसरी ओर संस्कृत-गर्भित-शैलीको भी तद्भवशब्द-बहुल बनाकर देश-भाषाके निकटतम ले आना है। उर्दू शैलीके संस्कारकी चेष्टा न हो रही हो, सो बात नहीं; स्वयं उर्दूके प्रसिद्ध कवियोंने उसके लिए कमर कसी है; मौलाना हाली और मौलाना अकबरने अप्रत्यक्ष ढंगसे देशभाषाका ही पक्ष लिया है; उन्होंने उस सरलताको अपना लक्ष्य बनाया है, जो किसी भी उपयुक्त शब्दसे घृणा नहीं करती, और जो किसी गौण सिद्धान्तकी

वेदीपर उच्चतर सिद्धान्तोंका बलिदान नहीं कर सकती। संस्कृत-गर्भित शैलीका भी संशोधन और परिमार्जन होता चल रहा है; हिन्दीके प्रसिद्ध कवि और लेखक उस ओरसे विरत नहीं हैं; देशके विभिन्न आन्दोलनोंका प्रभाव उसपर पड़ रहा है और वह सरलता तथा सुबोधताको ग्रहण करनेकी ओर अग्रसर है।

दोनों शैलियोंके उन्नायकोंकी ओरसे होनेवाले स्वाभाविक और उचित संस्कार-प्रयत्नके साथ ही एक कृत्रिम संघर्ष हमारे देशकी विदेशी शासन-पद्धति भी कर रही है, जिसका उद्देश्य विशुद्ध राजनीतिक पूँजी खड़ी करना है; उसने देशभाषाके नामपर 'हिन्दुस्तानी' भाषाका पृष्ठपोषण आरम्भ किया है और अप्रकट रूपसे दोनों ही शैलियोंके समर्थकोंकी मूर्खता उद्घोषितकी है। इस 'हिन्दुस्तानी'के पेटके भीतर वह सब कुछ है जो उर्दू शैलीके भीतर है, केवल आलोचकोंका मुँह बन्द करनेके लिए इधर-उधर थोड़ेसे संस्कृत शब्द भी बिखेर दिये जाते। हमारा निवेदन यह है कि इस कार्यवाहीसे वह प्रगति कुंठित हो गयी है जो दोनों शैलियाँ देश-भाषाके प्रकृत स्वरूपकी ओर पहुँचनेके निमित्त कर रही थीं। अस्तु।

उर्दू काव्यके जिन अनुकरणोंकी चर्चा ऊपर की गयी है वे तो चल ही रहे हैं, उर्दूके मशायरोंका अनुकरण भी एक विचित्र परिस्थिति उत्पन्न कर रहा है। प्रभाव ग्रहण करना अथवा अनुकरण करना अनुचित नहीं है, किन्तु गृहीत वस्तुको अपनी प्रकृतिमें मिलाकर कुछ नवीनता-सम्पन्न कर लेना चाहिए। उक्त कविताओंमें ऐसा नहीं है, उनमें जो प्रभाव दिखायी पड़ रहा है वह ग़लत दिशामें है तथा मशायरोंकी जो नक़ल हो रही है वह बेढंगी है; 'मुक़र्रर इरशाद' के लिए 'पुनर्वार' के आविष्कारतक ही वह परिमित है। संस्कृत-ब्रज भाषाके सुन्दर प्राचीन कालीन कवि-सम्मेलनोंका आदर्श विस्मृत किया जा रहा है और मशायरोंके उपयोगी सिद्धान्तोंसे भी कुछ शिक्षा नहीं ग्रहण की जा

रही है। खेद है, मशायरोंका एक बड़ा ही सजीव और सुन्दर वर्णन पं० रामनरेशत्रिपाठी × ने किया है:—

"उर्दूका मशायरा (कवि-सम्मेलन) देखने लायक होता है। तरह तरहके बाँके तिरछे शायर जमा होते हैं। सब जुदा-जुदा पिनकमें मस्त होते हैं। सबके पढ़नेके ढंग, नाज़ोअदा, कल्ल्ुद़के खास-खास तरीके होते हैं। आजकल कहीं-कहीं दिनमें भी मशायरे होते हैं; पर रिवाज है रात हीमें होनेका। जब सब शायर जमा हो जमा हो जाते हैं और दर्शक काफी तादादमें आ जाते हैं, तब मशायरा शुरू होता है। एक मीर मजलिस चुन लिया जाता है। मशायरोंमें जो जो शायर अपनी ग़ज़लें पढ़ना चाहते हैं, उनके नामोंकी सूची मीर मजलिसके सामने रख दी जाती है। आजकल तो बिजलीकी रोशनी या झाड़-फानूस या लालटेनोंका जमाना है, पर पहले मोमबत्तियाँ ही मजलिसकी आँखें थीं। अब मशायरेमें कुछ अँगरेजी ढंग आ गया है अर्थात् शायर लोग मीर मजलिसके पास ऊँचे तख्तपर खड़े होकर अपनी ग़ज़लें पढ़ते हैं। पर पहले शायरोंको अपनी जगहसे उठना नहीं पड़ता था। एक व्यक्ति शमा लेकर शायरके सामने जा पहुँचता था। उसीके उजालेमें शायर चहकने लगते थे। लुत्फ़ उस समय आता है, जब शायर अपनी ग़ज़ल शुरू करते हैं। पहले वे उठ खड़े होते हैं। बायें हाथ में काग़ज़का टुकड़ा होता है, जिसमें वे ग़ज़ल लिखकर लाते हैं। शुरू करनेके पहले कहते हैं—मतला अर्ज़ है। मजलिसमेंसे आवाज़ आती है—इरशाद। यदि शायरका कोई ख़ास प्रेमी या मान्य व्यक्ति वहाँ हुआ तो वह उसका नाम लेकर कहता है,—साहब मुलाहज़ा फरमाइये। वे आकर्षित होते हैं। प्रायः वे भी "इरशाद हो" कहते हैं। इतनी पेशबन्दीके बाद शायरने एक शेर पढ़ा। अगर वह अच्छा शेर हुआ और उसने श्रोताओंके कलेजे कतर दिये तो लोग यकायक

× उर्दू ज़बानका संक्षिप्त इतिहास

चीख़ उठते हैं—वाह वा, वाह वा, क्या खूब कहा है; लाजवाब शेर है; कलेजा निकालकर रख दिया है; मुकर्रर इरशाद; मुकर्रर इरशाद; सुब्हान अल्ला; क्या अच्छी तबीअत पाई है; ज़रा फिर कहिये; आदि प्रशंसा-सूचक वाक्योंकी झड़ी लग जाती है। उधर तो श्रोता प्रशंसा करते हैं, इधर शायर का यह हाल कि वह ज़रा झुककर जिधर-जिधर से तारीफकी आवाजें आती हैं, उधर-उधर घूम-घूमकर दाहिने हाथकी हथेलीको बार-बार माथेतक ले जाकर सलाम करता रहता है। जब कसरतसे छुट्टी मिलती है, तब शायर दूसरा शेर पढ़ता है। फिर वही तारीफ़के वाक्य उड़ने लगते हैं। तालियाँ भी पीटी जाती हैं। भवन क़हकहे और चहचहे से गूँज उठता है। जोशमें आकर लोग खड़े भी हो जाते हैं और शायरकी ओर हाथ उठाकर कहते हैं—आपने तो ग़ज़ब कर दिया; आपका यह शेर लाख रुपयेका है; क़लम चूम लेनेको जी चहता है। और खूब-खूबकी आवाज़ तो खूब ही आती है। उधर शायरको बार-बार शिर झुका-झुकाकर, हथेलीको मुँहके सामने लेजा-लेजाकर अपनी नम्रता दिखानी पड़ती है। शायर हाथ ही से सलाम नहीं करता, बल्कि मुँहसे "आदाब अर्ज़ है" भी कहता जाता है। जिसके शेरको लोग दो बार, तीन बार सुनते हैं; वह अपना अहोभाग्य मानता है। बड़े शायर अपने शागिर्दोंको भी साथ ले जाते हैं। वे शागिर्द तो अपने उस्तादके शेरोंपर और भी आसमान सिरपर उठा लेते हैं। कभी-कभी दो प्रति-द्वन्दी शायर जब मशायरेमें आ जाते हैं, तब तो और भी मज़ा आता है। तरफ़दार लोग वह नारे लगाते हैं कि मजलिसके बाहरके लोगोंको एक हंगामा-सा मालूम होता है। पहलेके शायर तलवार और छुरी-कटार भी बाँधकर मशायरेमें जाया करते थे। कोई-कोई तो तमंचे भरके बैठा करते थे। कभी कभी तलवारें म्यानसे निकल भी पड़तीं थीं। पर अब पुलिसके भयसे वह मज़ा ही जाता रहा। गज़लके आख़ीरमें शायरको फिर कहना पड़ता है—मक़ता अर्ज़ है। श्रोताओंमेंसे

कोई कहता है—इरशाद। ऐसा ही तमाशा प्रत्येक शायरके उठनेपर होता है। मशायरेमें सचमुच बड़ी चहल-पहल रहती है। थोड़ी देरके लिए आदमी अपने सांसारिक कष्टोंको भूल जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि शेर सुनकर करुणा या हर्षके मारे लोग मूर्च्छित हो गये हैं। मैंने एक मशायरेमें एक शेरसे प्रभावित होकर एक मौलानाको घंटों मूर्च्छित पड़े देखा था। पता नहीं, पाखंड था या सच।

कभी-कभी जब कोई शायर बहुत अच्छी, दिलको फड़कानेवाली, तबीअतको हुलसानेवाली, कलेजेमें तीरकी तरह चुभनेवाली कोई ग़ज़ल पढ़ते हैं तो बाक़ी शायर अपनी-अपनी ग़ज़लें फाड़कर फेंक देते हैं और कहते हैं कि अब इसके आगे कुछ पढ़ना फ़िज़ूल है। यह कहकर कुछ हँस भी देते हैं। पढ़नेवाला शायर इसे अपना बहुत सम्मान समझता है। वह जीवन भर इस घटनाको याद रखता है और अपने मित्रों और शागिर्दोंके सामने इसकी चर्चा भी करता है।

मशायरेमें किसी-किसी उर्दू शायरका ग़ज़ल पढ़नेका ढंग बहुत ही आकर्षक और दर्दसे भरा होता है। श्रोताओंपर उसका भी असर पड़ता है।"

सम्भव है, त्रिपाठीजीके कथनमें कुछ अतिशयोक्ति अथवा व्यंगोक्ति हो गयी हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कवियोंकी प्रशंसाका जो ढंग मशायरोंमें स्वीकार किया जाता है, उसमें सचाई एक आने और प्रवञ्चना पन्द्रह आने होती है। एक आने सच्चाई हमने इसीलिए मानी है कि आचार्यों और अध्यक्ष तथा कुछ सहृदय कवियोंके रीझनेमें यथार्थ कलारसिकताका प्रभाव दृष्टिगोचर हो सकता है। रहे ग़ज़ल फाड़ने वाले और घंटों मूर्च्छित पड़े रहनेवाले शायर, सो यह सब तो आत्म-विज्ञापनके ढंग हैं और इन प्रदर्शनोंका एकमात्र रहस्य यह है कि जिनसे रिझानेकी शक्ति स्वीकार नहीं की जाती वे रीझनेकी शक्ति दिखलाकर ही लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। फिर

भी यह आत्म-विज्ञापन ऊँचे दर्जेका है और मानव-दुर्बलताको एक हितकारी अभिव्यक्ति ही प्रदान करता है। मशायरोंमें फिर भी कई बातें हैं जिनका हिन्दी कवि-सम्मेलनोंमे प्रवेश होना चाहिए। एक तो यह कि वहाँ कोई भी ग़ज़ल तबतक नहीं पढी जा सकती जबतक किसी आचार्य-द्वारा उसका संशोधन न हो चुका हो। मशायरेके मीर मजलिसका ध्यान शेरके भीतर आनेवाले शब्दों और महावरोंके प्रयोगके ऊपर रहता है, अन्य आचार्य्य भी उस ओर कान लगाये रहते हैं। इस प्रथाके कारण भिन्न-भिन्न कवि-समाजोंके आचार्य्योंको चौकन्ना रहना पड़ता है, क्योंकि इस प्रकार मशायरा एक कठिन परीक्षास्थल हो जाता है। दूसरी बात यह है कि मशायरेमें प्रत्येक कवि और आचार्य्यका उचित सम्मान किया जाता है; ऐसा नहीं हो सकता कि जिसने अभी साहित्य क्षेत्रमें क़दम रक्खा है वह उन सम्मानित व्यक्तियोंसे आगे बैठ सके जिन्होंने साहित्य-सेवामें अपनी आयु बितायी है। साहित्य-क्षेत्रमें पिसनेवालेको धन-वैभव तो मिलता नहीं, ऐसी अवस्थामें यदि नये रँगरूट उसके सम्मानको भी पैरों तले रौंद दे तो वह मर्म्माहत हुए बिना रह नहीं सकेगा। तीसरी बात यह है कि मशायरोंके संयोजक शायरोंकी सुविधाके लिए वह सब प्रबन्ध करते हैं जो समाजमें प्रथमश्रेणीके मानसिक कार्य्यमें लगे हुए लोगोंके लिए किया जाता है। हिन्दी-कवि-सम्मेलनोंमें इन तीनों ही बातोंका प्रायः अभाव देखनेमें आता है; यहाँ जिसने चार चरण जोड़ लिए वह महाकवि हो गया और उसकी कविताका कोई एक पद शुद्ध न होनेपर भी वर्डसवर्थ और शेलीकी कविताओंके कान काटने लगा। ऐसे महाकवि आचार्य्यसे संशोधन कराने भला क्यों जाने लगे? राजनीतिक आन्दोलनोंकी बदौलत हिन्दीमें किसी भी रँगरूटके लिए क्रान्तिकारी कवि हो जाना इतना आसान है जितना और कुछ नहीं; बेचारे प्राचीन साहित्य सेवी उनसे आदर-सम्मान तो पानेसे रहे, उलटे उन्हें सामने आता देखकर स्वयं सम्मान प्रदर्शनार्थ खड़े होते हैं। इसका

परिणाम यह हो रहा है कि कवि-सम्मेलनोंमें शोचनीय अनियंत्रण दिखायी पड़ता है। तीसरी बात यह कि प्रायः कविसम्मेलनोंके संयोजक अपनेको ही अधिक गौरवाधिकारी समझकर इतनेको ही बहुत अधिक मानते हैं कि उन्होंने कवियोंको अपने यहाँके कवि-सम्मेलनकी सूचना दे दी; अब कविका यह काम है कि वह धड़धड़ाते हुए इक्केपर बैठकर या उसका प्रबन्ध न हो सके तो पैदल ही कवि-सम्मेलनमें उपस्थित हो। उपस्थित होनेपर भी संयोजक महोदय यह पता लगानेकी चेष्टा न करेंगे कि उन्होंने जिन कवियोंको निमंत्रित किया है, उनमेंसे कौन-कौन आये और कौन-कौन नहीं आये और जो आये उनके बैठनेका भी उचित प्रबन्ध हुआ या नहीं। ऐसा प्रायः विश्वविद्यालयोंके कविसम्मेलनोंमें होता है, जहाँ अध्यापकगण अतिरंजित महत्त्व-भावनाके कारण हिन्दी कवियोंका उचित सम्मान नहीं कर पाते। क्या ही अच्छा होता, यदि हिन्दी कवि सम्मेलनोंके कर्णधार मशायरोंके संयोजकोंकी सत्कारपरायणता और प्रबन्धपटुताकी ओर दृष्टि रखकर उनसे इस विषयमें बढ़नेके लिए होड़ करते।

हमारी समझमें मशायरोंकी अनेक विशेषताएँ ग्रहणयोग्य हैं और यदि हिन्दी कवि सम्मेलनोंको जीवित रहना है तो उन्हें निम्नलिखित बातोंकी ओर यथेष्ट ध्यान देना पड़ेगा :—

१—आचार्योंके भिन्न दल हों जो अपने प्रतिभाशाली शिष्योंकी कविताओंका संशोधन करें और जिनकी सिफारिशके बिना कोई कविता कवि सम्मेलनमें न पढ़ी जा सके।

२—कवि-सम्मेलनोंमें केवल समस्यापूर्तियोंका पाठ हो और ये समस्यापूर्तियाँ कवित्त, सवैया, दोहा आदि छन्दोंमें हों। स्वतंत्र विषयोंपर लिखी गयी कविताएँ थोड़ेसे काव्यपारखी व्यक्तियोंके बीचमें पढ़ी जायँ।

३—भिन्न-भिन्न दल अवधी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली तीनों ही का प्रतिनिधित्व करें।

४—आचार्योंके स्थान सभापतिके पास निर्दिष्ट हों, वहाँ किसी भी

व्यक्तिको बैठनेकी अनुमति न प्राप्त हो। शिष्योंका दल अलग-अलग टोलियोंमें बैठे। जिस निमंत्रित कविको कविता-पाठ न करना हो वह कवि सम्मेलनमें उपस्थित न हो। नामकी घोषणा हो जानेपर किसी भी कविका कविता-पाठसे इनकार करना कवि-सम्मेलन और उसके सभापतिका अपमान समझा जाय।

५—संयोजक प्रत्येक निमंत्रित कविका स्वागत करे तथा कवि-सम्मेलनके अनन्तर कविको स्वयं विदा करे; जो ऐसा न कर सके वह संयोजक-पदपर न रहे और उसके द्वारा संयोजित कविसम्मेलनका बहिष्कार किया जाय।

स्वतंत्र विषयको कवि-सम्मेलनसे पृथक् करनेके पक्षमें हम इसलिए हैं कि कविसम्मेलनका सामूहिक स्वरूप एक निश्चित कसौटीपर कवियोंकी प्रतिभाका चमत्कार परीक्षित करने ही की अपेक्षा करता है; जिस यंत्रमें जैसी योग्यता है वैसा ही काम उससे लेना चाहिए। काव्य-सम्बन्धी विभिन्न प्रयोग, स्वतंत्र विषयोंपर लिखी गयी लम्बी कविताएँ छोटे-छोटे साहित्यिक वर्गों ही के वृत्तमें परिमित रहें तो अधिक अच्छा हो। हिन्दीके प्राचीन कवि-सम्मेलनोंमें जब पूर्तियों ही की विशेषता रहती थी तब उनमें मशायरोंकी अपेक्षा कम सरगरमी नहीं रहती थी; वर्त्तमान कवि-सम्मेलनोंको उसी प्रकृत धरातलपर पहुँचा देनेसे उनकी लोकप्रियता तथा उपयोगिता भी बढ़ जायगी।

उर्दू-हिन्दीके काव्य—दो समानान्तर रेखाएँ क्यों ?

प्रत्येक कविकी, प्रत्येक साहित्यकी प्रवृत्तियोंकी समय समयपर आलोचना होनी चाहिए; उसके मूल उद्गम-स्थलतक पहुँचनेकी चेष्टा करके हमें यह निश्चय करते रहना चाहिये कि उसका स्वरूप समाजके लिए अहितकर तो नहीं हो रहा है। इस सम्बन्धमें अमरीकाके प्रसिद्ध कवि वाल्टह्विटमैनने कुछ उपयोगी बातें लिखी हैं, जिनका सारांश मार्च सन् १९२८ की "सरस्वती" में प्रकाशित हुआ था उसे पाठकोंके अवलोकनार्थ हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं :—

"समालोचनाके विषयमें अमरीकाके प्रसिद्ध कवि वाल्टह्विटमैनकी सम्मति ध्यान देने योग्य है। उनका कथन है—साहित्य-मर्मज्ञोंकी यह एक धारणा-सी हो गई है कि केवल साहित्यकी अवनतिके दिनोंमें समालोचनाका उदय होता है। सम्भव है, ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बात सच हो, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि यह बात तीनों कालोंके लिए एक समान सत्य है। मैं तो समझता हूँ कि यदि उचित प्रकारकी समालोचना हो, यदि यह काम केवल उन लोगोंके हाथमें रहे जो वस्तुतः बड़े हैं तो वे सहज ही में आधुनिक कालके लेखकोंकी कुरुचिपूर्ण मर्यादाओंकी धज्जियाँ उड़ा सकते हैं; इतना ही नहीं वे इसका भली प्रकार विध्वंस करके उच्च-कोटिके लेखकों, यहाँतक कि कवियोंको भी उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु इसके लिए समालोचकोंका एक आदर्शकी कल्पनाकी, सृष्टि करनी होगी। संसारमें ऐसे कितने मनुष्य हैं जो ऐसे साहित्य-मर्मज्ञोंके महत्त्वको स्वीकार कर सकें जो केवल सत्यकी खोजमें व्यस्त रहते हैं। यदि हम समालोचनाको

केवल उसी अर्थमें प्रयुक्त करें जिसमें उसे होना चाहिए तो वह सचमुच बड़ा ऊँचा काम है। यह एक कला है, शायद इसे हम एक धार्मिक सम्प्रदायका स्थान देनेमें भी सङ्कोच न करेंगे, क्योंकि इस संसारमें जो कुछ है, मनुष्यने जितनी भी सफलता यहाँ प्राप्त की है, वे सब इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। इसके सिद्धान्त सुनिश्चित हैं। एक ओर सारा विश्व इसमें समाया हुआ है, सार्वभौमिकता इसमें कूट-कूटकर भरी है, किन्तु दूसरी ओर यह छोटी-से-छोटी बातकी भी अवहेलना नहीं करता। समालोचककी आँख सदैव खुली रहती हैं और कान सदा चैतन्य रहते हैं। उसे आवेगों और भावनाओंका नैसर्गिक और बौद्धिक दोनों प्रकारका बहुत उत्तम ज्ञान होता है। उसका क्षेत्र केवल बुद्धितक नहीं है, हृदयपर भी उसका अधिकार है, क्योंकि पिताके अनुभवों माताके वात्सल्यपूर्ण भावों, देशभक्तकी चिन्ताओं आदिका पूरा-पूरा पता होता है। वह साहित्यका मर्मज्ञ होता है— इस विषयमें तो कहना ही क्या, सारी पुस्तकोंका भाण्डार उसकी हथेलीपर नाचता है। सच पूछो तो उसे पुस्तकोंका व्यसन-सा होता है। इन सब गुणोंसे युक्त होनेपर ही समालोचक सच्चा समालोचक हो सकता है। किन्तु एक बात रह गई। उसमें धार्मिक भावना होना परमावश्यक है। और वह धार्मिक भावना नहीं जैसी आजकल लोकप्रिय पुस्तकों और सामयिक पत्रोंके लेखोंमें दिखाई देती है, किन्तु उसके लिये श्रद्धापूर्ण अनुभव होना चाहिए जो गम्भीर और विशाल ज्ञानसे उद्भूत होता है। आश्चर्य तो यह है कि यह अनुभव बिना विशेष प्रयासके, सरलतासे ही, किसी किसीको प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि समालोचकको यह विश्वास होना चाहिए कि मनुष्यकी कृति और इस ब्रह्माण्ड या विधाताकी कृतिका एक निश्चित उद्देश्य है और वह अविनश्वर है। बस, यही हमारी समालोचककी परिभाषा है। ऐसा समालोचक किसी भी बड़े कामके लिए उपयुक्त हो सकता है, साहित्यके लिये तो उसकी अनिवार्य आवश्यकता है। हमारे इस नूतन युगके प्रसार और नियन्त्रणमें भी उसका

बड़ा हाथ हो सकता है, क्योंकि उसके द्वारा जिस नूतन युगकी नींव पड़ेगी उसका आधार अगाध विश्वासपर रक्खा जायगा।"

जिन समालोचकोंमें उक्त प्रकारकी योग्यता हो उन्हींके द्वारा यह निर्णय होना चाहिए कि उर्दू-हिन्दीमें भाषागत अत्यन्त उपेक्षणीय अन्तर होनेपर भी उनके काव्य दो समानान्तर रेखाओंमें क्यों चल रहे हैं और क्या कभी वह समय आ सकेगा जब दोनोंका संगम एक ऐसे आदर्शकी सेवाके स्थलमें हो जो दोनों ही के लिए समान रूपसे आराध्य हो?

उर्दू-हिन्दी काव्यकी आलोचना करते हुए एक सज्जन लिखते हैं:—

"कविकी प्रतिभा अनेक दृश्य देखती है, अनेक भाव उसमें उदय होते हैं और वही वाणी अथवा लेखनी द्वारा कविताका रूप धारण करते हैं। इस कवितामें पाठकके दिल और दिमाग़पर क़ब्ज़ा कर लेनेका जो सामर्थ्य होता है, उसीका नाम है रस। कविताका जैसा भाव और प्रभाव होगा, वैसा ही उस रसका परिपाक कवितामें समझा जायगा। भारतीय काव्यमर्मज्ञोंने कविताके नौ रस माने हैं—शृंगार, वीर, करुणा, रौद्र, हास्य, बीभत्स, भयानक, अद्भुत और शान्त। कुछ लोग शृंगार-रसको सबसे प्रधान मानते हैं और कुछ करुणा-रसको। पति-पत्नीके संयोग-वियोगके वर्णनसे जिस रसकी उत्पत्ति होती है वह शृंगार-रस और दीन-दुखी, पीड़ित-पतितकी दयाजनक अवस्थाका, उनके शोकों और दुखोंका वर्णन करनेसे जो रस उत्पन्न होता है वह करुणरस कहलाता है। शृङ्गाररसका मूल तो प्रेम है, जो कि दो हृदयोंको अभिन्न बनाता है, परन्तु हमारे कितने ही संस्कृत, हिन्दी और उर्दू-कवियोंने उसे विषयका रूप दे डाला है। मानव हृदयका वह निर्मल और उच्च भाव, इन कवियोंके पल्ले पड़कर नायक-नायिकाके शारीरिक भोगोंकी सामग्री बन गया! जबतक कि मन सुसंस्कारवान् न हो, प्रेमके लिए भोगका रूप धारण कर लेना आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रेममें मनोगत सात्विक शुद्ध आनन्द है, प्रेमीकी सेवा करने, उसके सुख और उन्नतिमें सहायक होनेकी अभिलाषा है, भोगमें

अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी चाह है। प्रेममें देवी-भाव है, भोगमें पाशविक। प्रेम अपनेको दूसरेके अर्पण कर देता है, भोग दूसरेको अधीन रखना चाहता है। दो पुरुषोंके प्रेम और स्त्री-पुरुषके प्रेममें अन्तर है। स्त्रियोंके साथ पुरुषोंका जो प्रेम होता है उसमें स्त्रियोंकी शारीरिक विशेषता या भिन्नताका आकर्षण मुख्य होता है और इसलिए उनका प्रेम जल्दी भोगमें परिणत हो जाता है। वास्तवमें देखा जाय तो प्रेमके लिए विपरीतलिङ्गी अधिष्ठानकी आवश्यकता न होना चाहिए। प्रेमका अधिष्ठान व्यक्ति ही हो, यह भी आवश्यक नहीं। कोई सिद्धान्त कोई आदर्श, वस्तु, कोई देश, कोई देव क्यों न हमारा प्रेमाधार हो? हम अपनी प्रियतमाका ही रोना क्यों रोते फिरें—उसीके पीछे क्यों अपनेको बरबाद और बदनाम करते फिरें? क्यों न हम सत्य, स्वाधीनता, परमेश्वर या अपने देशके लिए रोयें, मरें और बरबाद हों? परन्तु हमारे परम्परागत शृंगाररसमें इसके लिए कितना स्थान है? वहाँ व्यभिचारतक तो जायज़ समझा जाता है—वहाँ तो मनोविकार ही प्रेम है, उसकी तृप्ति ही अलौकिक आनन्द है और अलौकिक आनन्दका नाम है रस। जिसे नायिका-भेदका जरा भी ज्ञान है, वह इस शृंगार-रसकी भयङ्करताको जल्दी समझ सकता है। अतएव मेरी रायमें शृंगार-रसकी जगह हमें प्रेम-रसका निर्माण करना चाहिए। उसे भोग-विलासकी गन्दी रटसे निकालकर मनोगत सात्विक आनन्दकी गंगोत्रीपर प्रतिष्ठित करना चाहिए। जो कवि जितना ही अधिक इस निर्मल प्रेमसे प्रेरित होकर गायेगा, उतनी ही अधिक वह उसकी सेवा करेगा। निर्मल प्रेमकी पुकार मानो दूधकी गंगा है, मानो अमृतकी धारा है; और सविकार प्रेमका उन्माद मानो मद्यका सरोवर है, हलाहलका कुण्ड है।"

उक्त पंक्तियोंमें उर्दू और हिन्दी काव्यकी आलोचनामें प्रायः एक ही बात कही गयी है; निस्सन्देह हिन्दी-काव्यमें नायिका-भेद-सम्बन्धी अंश वासनात्मक चित्र उपस्थित करता है; इसी प्रकार उर्दू-काव्यका अधिकांश

भाग दूषित मोहजन्य वर्णन ही हमारे सामने आता है। किन्तु हिन्दीकाव्यकी विजय इस बातमें है कि दूषित अंशको निकाल देनेपर भी उसका एक बहुत बड़ा भाग ऐसा रह जाता है, जो वास्तवमें उसका प्राण है, उधर उर्दू-काव्यमेंसे वैसा ही भाग बहिष्कृत कर देनेपर प्रायः उसका दम घुट जायगा। उर्दूके पक्षमें कुछ थोड़ी-सी जातीय तथा बहुत थोड़ीसी सच्ची राष्ट्रीय कविताओंकी तुलनामें हिन्दी काव्यके पक्षमें पहाड़की तरह उन्नत शिर रामचरितमानस, सूरसागर आदि जैसी बहुमूल्य रचनाएँ दिखायी पड़ेंगी। और दोनों ओरके इन्हीं अवशिष्ट तत्त्वोंका अध्ययन करके ही हम अपने प्रश्न—उर्दू-हिन्दीके काव्य—दो समानान्तर रेखाएँ क्यों ?—का उत्तर भी प्राप्त कर सकेंगे।

वे अवशिष्ट तत्त्व क्या हैं ? कहना नहीं होगा कि वे वास्तवमें उन प्रयत्नोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनके उद्योगसे दैनिक जीवनके मानव-सम्बन्धोंमें उस सरलता और सरसताका संचार होता है जो राजनीतिक वातावरणमें तनाव पाकर विरक्त हो जाती है। हमारा आशय यह है कि उर्दू-काव्य और हिन्दी-काव्यके द्वारा भारतीय समाजमें, हिन्दू-मुसलमानोंमें सौहार्द-स्थापनके लिए वे प्रयत्न होने चाहिएँ थे जो साहित्य-द्वारा सम्भव हैं। उदाहरणके लिए, उर्दू और हिन्दी साहित्य-क्षेत्रमें ऐसे व्यक्तियोंको जन्म लेना चाहिए था जो भारतकी पराधीनता, भारतीय व्यक्तित्वके विकासमें अदम्य बाधा विघ्नोंकी ढेरीसे व्याकुल होकर कमसे कम कटोद्‌गारके रूपमें अपनी पीड़ा तो व्यक्त करते। हम यह स्वीकार करनेको तैयार हैं कि कुछ दुर्बल प्रयत्न उर्दू काव्यके क्षेत्रमें इस दिशामें अवश्य हुए हैं, किन्तु, यह स्पष्ट रूपसे कहा जा सकता है कि उर्दू-काव्य अथवा साहित्यने अपने कर्त्तव्यके शतांशका भी पालन नहीं किया है। इस प्रसंगमें डा० चकबस्त जैसे हिन्दू कवियोंका नाम लेना निरर्थक है; मुस्लिम मनोवृत्तिको जगानेका काम मुस्लिम कवि ही कर सकता है। इस्लामके कठोर संस्कारोंमें पला हुआ चार मुस्लिमकवि ही भी कलात्मक रचनाओं और निर्माणात्मक विचारों

भावनाओं द्वारा संभव है। दूसरी ओर हिन्दी काव्यके सम्बन्धमें यह गर्व-पूर्वक कहा जा सकता है कि उसने भारतीय पीड़ाकी अनुभूतिको हृदयमें धारण करने और अभिव्यक्ति प्रदान करनेकी चेष्टा की है, यद्यपि पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त की है। इकबाल जैसे उर्दूके कविकी लेखनी इस कार्य्य-पूर्तिकी ओर झुककर देशके जीवनमें क्रान्ति कर सकती थी। खेद है, इस पथपर अग्रसर होकर भी वे अंतिम समयतक अपने राष्ट्रीय विचारोंपर अटल नहीं रह सके और अन्ततो गत्वा उन्हीं दकियानूसी साम्प्रदायिक भावनाओंके समर्थक हो गये जिन्होंने भारतकी प्रगतिको रोक रखा है।

हमारे जीवनमें केन्द्रोन्मुखी और केन्द्रापसारी—दो प्रवृत्तियाँ—अनवरत रूपसे क्रियाशील रहती हैं। भारतीय राष्ट्रीयताका लक्ष्य जीवनके एक ऐसे सिद्धान्तकी स्वीकृतिकी ओर रहा है जो सम्पूर्ण भारतके व्यक्तित्वको उचित और स्वाभाविक विकास प्रदान कर सके। यह प्रवृत्ति केन्द्रोन्मुखी है।

भारतीय राष्ट्रीयताका विरोधी दल ऐसे आधारकी खोजमें है जो उक्त प्रवृत्तिको, उक्त प्रयत्नको बिखेर डाले, संघशक्ति न प्राप्त करने दे। यह प्रवृत्ति केन्द्रापसारी है।

काव्य उस धर्म्मका उपासक है जो प्राणीमात्रकी कल्याण-कामनाके रूपमें प्रकट हो। धर्मके लिए वह केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तियोंका गान करता है और जब केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तियोंमें असत्यके घुन लग जाते हैं तब गम्भीर वाणीमें वह केन्द्रापसारी प्रवृत्तिका भी आवाहन करता है। केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तिकी परिणति प्रेममें और केन्द्रापसारी प्रवृत्तिकी परिणति युद्धमें होती है। काव्य और साहित्यका यह कर्त्तव्य है कि वे प्रेमका स्वर ही उच्चारित करें; हाँ, यदि प्रेमके पथमें धोखा हो गया है तो युद्ध घोषणाके पक्षमें अपने आपको व्यक्त करनेका समर्थन वे प्राप्त कर लेते हैं।

उर्दूके कवियोंसे, कलाकारोंसे हमारा यह प्रश्न है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयताके भारतीय समाजके नवीन रचनात्मक निर्माण स्वरमें स्वर क्यों नहीं मिलाया? क्या कारण है, जिससे प्रेरित होकर वे मानव-धर्मके सत्यके

उस मधुर स्वरूपका चित्रण नहीं कर सके जो उनके अन्य बन्धुओंके हृदयोंको कोमल बनाता, जो भारतीय-राष्ट्रीयताके आवाहनकारी बाहुपाशमें प्रेमपूर्वक बँध जानेके लिए उन्हें और भी उमंगके साथ आगे ठेल देता। संक्षेपमें यदि हमें इसका उत्तर देनेके लिए कहा जाय तो हम यही कहेंगे कि वे उस व्यवधानको नहीं तोड़ सके जो साम्प्रदायिकताने उनके सामने खड़ा कर रक्खा है, जो 'जीवित रहो और जीवित रहने दो' में व्यक्त होनेवाले सिद्धान्तका प्रतिपादक नहीं है, जिसमें आकाशसे गिरे हुएको खजूरपर अटका लेनेकी इच्छा विद्यमान है, जो प्रेमका नहीं, शासनका भूखा है और जो भारतकी असंख्य, पीड़ित, मूक जनताको अपना आहार बनानेमें ही अपनी परम सिद्धि समझता है।

जो हो, आदर्शोंमें उक्त प्रकारकी विभिन्नता होनेके कारण उर्दूके कलाकारोंका हिन्दीके कलाकारोंके साथ सौहार्द नहीं स्थापित हो सकता। हिन्दीके कलाकारोंका 'बुत' भारतवर्ष तथा भारतवर्षका वह शोषित, जर्जरीकृत व्यक्ति है जिसे चौबीस घंटोंमें अठारह घंटे कठिन परिश्रम करने-पर भी भरपेट भोजन और यथेच्छ वस्त्र नहीं प्राप्त होता, इसके विपरीत मुस्लिम कविका 'बुत' साम्प्रदायिक सत्ताका विस्तार तथा खोये हुए शासनका पुनः प्रसारमात्र है। उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है, यदि उसमें और हिन्दीमें आदर्शगत मतभेद न होता तो वह एक शैलीमात्र बनी रहती जैसी कि अबतक वह रही है, ठीक उसी तरह जैसे संस्कृत-गर्भित शैली देशभाषाका अंग बनी हुई है। किन्तु नग्न सत्य हमारे सामने है और उसे हमें इनकार न करना चाहिए।

यदि स्व० मुन्शी सदासुखलालकी भाषाको हम उर्दू मान लें, जैसा कि उन्होंने स्वयं माना है, तो संयुक्त प्रान्त ही क्या, सम्पूर्ण भारतकी भाषा भी उर्दू कही जाय तो हमें आपत्ति न होनी चाहिए। किन्तु क्या सर तेज-बहादुर सप्रू और डाक्टर ताराचन्द भी उसे उर्दू मानेंगे और उर्दू रचनाओंमें वैसी ही वाक्यरचना तथा शब्द-योजनाके लिए प्रयत्न करेंगे ? जिस

हिन्दुस्तानी* को डाक्टर ताराचन्द देशकी भाषा मानते हैं, क्या वह कोई ऐसी भाषा होगी जिसे देहातके रहनेवाले हिन्दू न समझ सकें ? अस्तु ।

---

* "हिन्दी (या वह हिन्दुस्तानी, जिसकी मैं कल्पना करता हूँ) जीवित भाषा है और रहेगी । वह मुट्ठी-भर पढ़े-लिखोंतक ही परिसीमित न रहेगी । उसके द्वारा राष्ट्रके हृदय और मस्तिष्कका अभिव्यञ्जन होना है, उसको दार्शनिक विचारों, वैज्ञानिक तथ्यों और हृद्‌गत भावोंके व्यक्त करनेका साधन बनना है । हमको भारतके बाहरसे आये हुए शब्दोंका प्रयोग करनेमें कोई लज्जा नहीं है । अरबी-फ़ारसीके सैकड़ों शब्द बोले जाते हैं और लिखे जाते हैं । यह बात आजसे नहीं, चन्दबरदाई और पृथ्वीराजके समयसे चली आ रही है । सूर, तुलसी, कबीर, रहीम—सबने ही ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया है । अँगरेजीके शब्दोंको भी हमने अपनाया है । योगीको सुषुम्ना नाड़ीमें प्राण ले जानेपर जिस दिव्य ज्योति-की अनुभूति होती है, उसका वर्णन करते हुए आजसे दो सौ वर्ष पहले चरणदासजीने लिखा था 'सुखमना सेज पर लम्प दमकै'; पर ये शब्द चाहे जहाँसे आए हों, हमारे हैं । आगे भी जो ऐसे शब्द आते जाएँगे, वे हमारे होंगे । हम उन्हें हठात् कृत्रिम प्रकारसे नहीं लेंगे । वह आप भाषामें अपने बलसे मिल जायँगे । पर उनके आ जानेपर भी भाषा हिन्दी ही है ।

× × ×

"बार-बार यह कहा जाता है कि कम-से-कम युक्तप्रान्तकी तो मातृ-भाषा उर्दू है । मैं ऐसा नहीं मान सकता । हमारे सामने कुछ हिन्दू-मूर्तियाँ खड़ी कर दी जाती हैं और उनके मुँहसे यह कहला दिया जाता है कि उनके घरोंकी भाषा उर्दू है । होगी ! हमारे लिए यह हिन्दू-मुसलमानका प्रश्न नहीं है । हमने कबीर, जायसी, रहीम, रसखान या मीर और अजमेरीको साहित्यकार और हिन्दी-प्रेमीकी दृष्टिसे देखा"

—श्रीसम्पूर्णानन्द

× × ×

स्थानाभावसे हम इस चर्चाको यहीं समाप्त करते हैं। हमारे उक्त निवेदनका एकमात्र लक्ष्य है पाठकोंके सामने इस बातको स्पष्ट कर देना कि जबतक मौलिक भावोंमें परिवर्तन न होगा, जबतक उर्दू और हिन्दीके कलाकार अपने सम्मिलित प्रयत्नसे साम्प्रदायिक बाधाओंको नहीं तोड़ेंगे, जबतक दोनों ही भारतको अपना आराध्य नहीं मानेंगे, तबतक उर्दू और हिन्दीका यह झगड़ा शान्त नहीं होनेका। और इस अस्पष्ट कथनके लिए भी हम क्षमा किये जायँ कि हिन्दी कलाकारोंकी अपेक्षा उर्दूके मुस्लिम कलाकारोंका उत्तरदायित्व बहुत अधिक है। इस सम्बन्धमें जबतक वे न चेतेंगे, जबतक वे केन्द्रोन्मुखी आदर्शोंको अपनाकर देशको, देशमें रहनेवाले समाजकी निःस्वार्थ सेवाको अपना लक्ष्य नहीं बनाएँगे तबतक यही कहा जायगा कि काव्यके क्षेत्रमें, साहित्यके क्षेत्रमें वे कोई ऐसा कार्य्य न कर सके जिससे उनके समाजके दैनिक जीवनका प्रवाह अधिक व्यावहारिक तथा उपयोगी दिशाओंमें मुड़ सके और तबतक उर्दू काव्य तथा हिन्दी काव्य दो समानान्तर रेखाओंमें चलते रहेंगे और हानि समूचे देशकी होगी तो वह वर्ग भी, जिसकी नाराजी अपने सिरपर लेनेसे वे डरते हैं; उस हानिसे अछूता न रहेगा।

× × ×

पाठकोंके अवलोकनार्थ स्वर्गीय श्रीचकबस्त और स्व० डा० इक़बालकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं :—

ऐ ख़ाके हिन्द तेरी अज़मत में क्या गुमाँ है।
दरियायफ़ैज़ कुदरत तेरे लिये रवाँ है॥
तेरी जबीं से नूरे हुस्ने अज़ल अयाँ है।
अल्ला रे ज़ेबो ज़ीनत क्या औज एज्ज़ो शाँ है॥
हर सुबह है यह ख़िदमत ख़ुरशीद पुर ज़ियाँ को।
किरनों से गूँधता है चोटी हिमालिया को॥

इस ख़ाके दिलनशीं से चश्मे हुए वह जारी।
चीनी अरब में जिनसे होती थी आबयारी॥
सारे जहाँ पै जब था वहशत का अब्रतारी।
चश्मो चिराग आलम थी सरज़मीं हमारी॥
शमये अदब न थी जब यूनाँ की अंजुमन में।
तावाँ था महरे दानिश इस वादिए कुहन में॥
गौतम ने आबरू दी इस मुआविदेकुहन को।
सरमद ने इस ज़मीं पर सदक़े किया वतन को॥
अकबर ने जामे उलफ़त बख़्शा इस अंजुमन को।
सींचा लहू से अपने राना ने इस चमन को॥
सब सूर वीर अपने इस खाक में निहाँ हैं।
टूटे हुए खँडर हैं या उनकी हड्डियाँ हैं॥
दीवारोदर से अब तक उनका असर अयाँ है।
अपनी रगों में अब तक उनका लहू रवाँ है॥
अब तक असर में डूबी नाकूस की फ़ुगाँ है।
फ़िरदौसगोश अब तक कैफ़ीयते अज़ाँ है।
कश्मीर से अयाँ है जन्नत का रंग अब तक।
शौकत से बह रहा है दरियाय गंग अब तक॥
अगली सी ताजगी है फूलों में औ फलों में।
करते हैं रक्स अब तक ताऊस जङ्गलों में॥
अब तक वही कड़क है बिजली की बादलों में।
पस्ती सी आ गई है पर दिल के हौसलों में॥
गुल शमए अंजुमन है गो अंजुमन वही है।
हुब्बे. वतन नहीं है ख़ाके वतन वही है॥
बरसों से हो रहा है बरहम समाँ हमारा।
दुनिया से मिट रहा है नामो निशाँ हमारा॥

कुछ कम नहीं अजल से ख्वाबेगरां हमारा।
इक लाश बे कफ़न है हिन्दोस्तां हमारा॥
इल्मो कमालईमां बरबाद हो रहे हैं।
ऐशो तरब के बन्दे ग़फ़लत में सो रहे हैं॥
ऐ सूर हुब्बेक़ौमी इस ख्वाब से जगा दे।
भूला हुआ फ़िसाना कानों को फिर सुना दे॥
मुर्दा तबीयतों की अफ़सुर्दगी मिटा दे।
उठते हुए शरारे इस राख से दिखा दे॥
हुब्बेवतन समाये आँखों में नूर होकर।
सरमें खुमार होकर दिल में सुरूर होकर॥
सैयादे बोस्ताँ को सर्वो समन मुबारक।
रंगी तबीयतों को रंगे सख़ुन मुबारक॥
बुलबुल को गुल मुबारक गुल को चमन मुबारक।
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक॥
गुंचे हमारे दिल के इस बाग़ में खिलेंगे।
इस ख़ाक से उठे हैं इस ख़ाक में मिलेंगे॥
है जूएशीर हमको नूरेसहर वतन का।
आँखों की रोशनी है जल्वा इस अंजुमन का॥
है रश्के मह्र ज़र्रः इस मंज़िले कुहन का।
तुलता है बर्गे गुल से काँटा भी इस चमन का॥
गर्दो गुबार यों का ख़िलअत है अपने तन को।
मरकर भी चाहते हैं ख़ाके वतन कफ़न को॥

× × ×

है ख़ाक और ही कुछ सूरतेयक़ीं मेरी।
बदल रही है बदन में मेरे ज़मीं मेरी॥

छिदेंगे क़ल्बोजिगर तीर है फ़ुग़ाँ मेरी।
लहू के रंग में डूबी है दास्ताँ मेरी॥
मुबालग़ा नहीं तमहीद शायराना नहीं।
ग़रीब क़ौम का है मरसिया फ़िसाना नहीं॥
वतन से दूर तबाही में है वतन का जहाज़।
हुआ है ज़ुल्म के पर्दे में शहर का आग़ाज़॥
सुने तो मुल्क के हमदर्द क़ौम के दमसाज़।
हवा के साथ यह आई है दुख भरी आवाज़॥
वतन से दूर है हम पर निगाह कर लेना।
इधर भी आग लगी है ज़रा ख़बर लेना॥
जो मिट रहे हैं वतन पर यह है सदा उनकी।
लहू पुकार रहा है यह है वफ़ा उनकी॥
बँधी है आलमे तहज़ीब में हवा उनकी।
ग़ज़ब की जा है जो गर्दन झुकी ज़रा उनकी॥
तुम्हारे दिल में न उल्फ़त की हूक उठे अफ़सोस।
वतन का क़ाफ़िला परदेश में लुटे अफ़सोस॥
ट्रान्सवाल के हाकिम वफ़ाशआर नहीं।
कुछ इनके क़ौल का दुनिया में एतबार नहीं॥
हमारी क़ौम पै अहसाँ का उनके बार नहीं।
यह ज़ुल्म क्यों है हम उनके गुनहगार नहीं॥
अगर वह दौलते बरतानियाँ के प्यारे हैं।
तो अहले हिन्द उसी आसमाँ के तारे हैं॥
मगर जफ़ा से नहीं ज़ालिमों को मुतलक़ आर।
उजाड़ते हैं वह बस्ती जो थी कभी गुलज़ार॥
जहाँ ख़ुशी के तरानों का गरम था बाज़ार।
सुनाई देती है वाँ बेड़ियों की अब झनकार॥

किया है बन्द मुसाफिर समझ के राहों को।
पिन्हाई जाती है जंजीर बेगुनाहों को॥
लुटे हैं यों कि किसी की गिरह में दाम नहीं।
नसीब रात को पड़ रहने का मुकाम नहीं॥
यतीम बच्चों के खाने का इन्तज़ाम नहीं।
जो सुबह खैर से गुजरी उमीदे शाम नहीं॥
अगर जिये भी तो कपड़ा नहीं बदन के लिये।
मरे तो लाश पड़ी रह गई कफ़न के लिये॥
नसीब चैन नहीं भूख प्यास के मारे।
हैं किस अज़ाब में हिन्दुस्तान के प्यारे॥
तुम्हें तो ऐश के सामान जमाँ हैं सारे।
यहाँ बदन से रवाँ हैं लहू के फ़व्वारे॥
जो चुप रहें तो हवा क़ौम की बिगड़ती है।
जो सर उठायें तो कोड़ों की मार पड़ती है॥
वतन से दूर भी हैं और ख़ानाबीरों भी।
असीरे यास भी हैं और असीरे ज़िन्दाँ भी॥
तबाह हाल हैं हिन्दू भी औ मुसलमाँ भी।
हुए हैं नज़्र मुसीबत के दीनों ईमाँ भी॥
पढ़ी नमाज तो उजड़े घरों के सहरा में।
अगर नहाये तो अपने लहू की गंगा में॥
अगर दिलों में नहीं अब भी जोश ग़ैरत का।
तो पढ़ दो फातहा क़ौमी वक़ारो इज्ज़त का॥
वफ़ा को फूँक दो मातम करो मुहब्बत का।
जनाज़ा लेके चलो क़ौमी दीनो मिल्लत का॥
निशाँ मिटा दो उमंगों का औ इरादों का।
लहू में ग़र्क़ सफ़ीना करो मुरादों का॥

कहाँ हैं मुल्क के सरताज कौम के सरदार।
पुकारते हैं मदद के लिये दरो दीवार॥
वतन की ख़ाक से पैदा हैं जोश के आसार।
ज़मीन हिलती है उड़ता है खून बन के गुबार॥
नगह से अपनी है चित्तौड़ की ज़मीं सर की।
लरज़ रही है कई दिन से क़ब्र अकबर की॥
भँवर में क़ौम का बेड़ा है हिन्दुओ हुशियार।
अँधेरी रात है काली घटा है औ मँझधार॥
अगर पड़े रहे ग़फ़लत की नींद में शरशार।
तो जेर मौजे फना होगा आबरू का मज़ार॥
मिटेगी कौम यह बेड़ा तमाम डूबेगा।
जहाँ में भीषमो अर्जुन का नाम डूबेगा॥
जिन्हें रुलाये न अब भी यह क़ौम की उफ़ताद।
स्याह क़ल्ब वह हिन्दू हैं कंस की औलाद॥
मगर वह क्या हैं किसी की भी गरान हो इमदाद।
असर दिखायगी जादू का क़ौम को फ़रियाद॥
उठेंगे ख़ाक के तूदों से दस्तगीर अपने।
जमीन हिन्द की उगलेगी सूरबीर अपने॥
दिखा दो जौहरे इस्लाम ऐ मुसलमानो।
वक़ारे क़ौम गया क़ौम के निगहबानो॥
सितून मुल्क के हो क़द्रेक़ौमियत जानो।
जफ़ा वतन पै है फ़र्ज़ वफ़ा को पहिचानो॥
नबी के खुल्को मुरव्वत के बुर्सादार हो तुम।
अरब की शानो हमैयत के यादगार हो तुम॥
करो ख़याल कुछ इस्फाफ की हमैयत का।
दिया था दुश्मने क़ातिल को जामा शरबत का॥

मुआमिला है यहाँ भाइयों की इज़्ज़त का।
यह फ़र्ज़ पेश है सौदा नहीं मुरव्वत का॥
अगर न अब भी हो इसलाम का जिगर पानी।
हज़ार लानत कुफ़रस्त पर मुसलमानी॥
अगर न क़ौम के इस वक़्त भी तुम आये काम।
नसीब होगा न मरने पै भी तुम्हें आराम॥
यही कहेगा ज़माना कि था बराये नाम।
वह धर्म हिन्दुओं का वह हमीयते इस्लाम॥
ज़रा असर न हुआ क़ौम के हबीबों पर।
वतन से दूर छुरी चल गई ग़रीबों पर॥
रहेगा माल न इतराए जायगी दौलत।
गई तो क़ब्र तलक साथ जायगी ज़िल्लत॥
करो जो एक रुपये से क़ौम की ख़िदमत।
तुम्हारी ज़ात से हो एक यतीम को राहत॥
मिले हिजाब की चादर किसी की अस्मत को।
कफ़न नसीब हो शायद किसी की मैयत को॥
जो दबके बैठ रहे सर उठाओगे फिर क्या।
उदू को क़ौम को नीचा दिखाओगे फिर क्या॥
रहेगा क़ौल यही उनसे उनकी माओं का।
लहू रगों में तुम्हारी है बेहयाओं का॥
मिटा जो नाम तो दौलत की जुस्तजू क्या है।
निसार हो न वतन पर तो आबरू क्या है॥
लगा दे आग न दिल में तो आरज़ू क्या है।
न जोश खाय जो ग़ैरत से वह लहू क्या है॥
फ़िदा वतन पै जो हो आदमी दिलेर है वह।
जो यह नहीं तो फ़क़त हड्डियों का ढेर है वह॥

तू वह मख़्लूक़ है ख़िलक़त में नहीं जिसकी गुनाह ।
ली है क़ालिब में तेरे रूहे मुहब्बत ने पनाह ॥
तेरी सूरत से अयाँ होती है इन्सान की चाह ।
रसभरी आँख समाई हुई अमृत में निगाह ॥
नक़्श है दिल पै मेरे मोहनी सूरत तेरी ।
खूब दुनियाँ के शिवाले में है मूरत तेरी ॥
तन से तेरे है अयाँ नर्मिए दिल का जौहर ।
जोड़ बन्द ऐसे कि साँचे में बने हैं ढलकर ॥
रंग काला हो कि उजला हो यह कहती है नज़र ।
बिन्द्राबन की वह है शाम यह मथुरा की सहर ॥
कश्क़े से यह नहीं चेहरए नूरानी पर ।
ताज क़ुदरत ने सजा है तेरी पेशानी पर ॥
देखे जंगल में कोई शाम को तेरी रफ़्तार ।
बे पिये जैसे किसी को हो जवानी का खुमार ॥
मस्त कर देती है शायद तुझे क़ुदरत की बहार ।
वह उतरती हुई धूप और वह सब्ज़े का नखार ॥
एक यक गाम पै शोख़ी से मचलना तेरा ।
पी के जंगल की हवा झूम के चलना तेरा ॥
साहबे दिल तुझे तस्वीरे वफ़ा कहते हैं ।
चश्मए फ़ैज़े ख़ुदा मर्दे ख़ुदा कहते हैं ॥
दर्दमन्दों की मसीहा शुअरा कहते हैं ।
माँ तुझे कहते हैं हिन्दू तो बजा कहते हैं ॥
कौन है जिसने तेरे दूध से मुँह फेरा है ।
आज इस क़ौम की रग रग में लहू तेरा है ॥
नाम जिसका है मुहब्बत वह है ईमाँ तेरा ।
कोई हो फ़ैज़ है सबके लिए एकसाँ तेरा ॥

जिन्दगी के लिये मोहताज है इन्साँ तेरा।
कौन बीमार नहीं बन्दए अहसाँ तेरा॥
हल्क़ में दूध से तेरे जो तरी रहती है।
खुश्क टहनी तने लाग़र की हरी रहती है॥
सूरतें याद हैं उन बच्चों की प्यारी प्यारी।
जिन्दगी थी जिन्हें यक एक घड़ी थी भारी॥
तेरे दम से न रही यास की हालत तारी।
हो गईं उनके लिए दूध की नहरें जारी॥
कितने गिरते हुए पौधों को सँभाला तूने।
माँ जिन्हें छोड़ चली थी उन्हें पाला तूने॥
तेरे बच्चों ने किया अपने सहँ इस पे निसार।
अपनी गर्दन पे लिया पर्वरिशे क़ौम का बार॥
नज़र आती है जो हर फ़स्ल में खेती तैयार।
है यह सब उनके लहू और पसीने की बहार॥
उनको मंजूर न होता जो मिटाना अपना।
हिन्द की ख़ाक उगलती न ख़ज़ाना अपना॥
अहलेदीं ने तुझे जन्नत का सहारा समझा।
अपने ईमान की क़िस्मत का सितारा समझा॥
शूर-वीरों ने तुझे जान से प्यारा समझा।
तुझको अकबर ने सदा आँख का तारा समझा॥
आबरू क़ौम की है तेरी निगहबानी पर।
यही दो हर्फ़ लिखे हैं तेरी पेशानी पर॥
मिस्ल बच्चों के तेरे दूध के हैं मतवाले।
जो ज़ईफ़ी से पड़े रहते हैं बिस्तर वाले॥
मस्त रहते हैं तेरे फ़ैज़ से कम चलवाले।
प्यार से कहते हैं माता तुझे बच्चे वाले॥

तेरी उल्फ़त से इन्हें मुँह नहीं मोड़ा जाता।
तेरी सूरत का खिलौना नहीं तोड़ा जाता ॥
मेरे दिल में है मुहब्बत का तेरी सरमाया।
माँ के दामन से है बढ़कर मुझे तेरा साया ॥
याद है फ़ैज़ तबीयत ने जो तुझसे पाया।
ऐन क़िस्मत जो तेरा नाम ज़बाँ पर आया ॥
इस हलावत से जो दावाय सखुन गोई है।
दूध से तेरे लड़कपन में ज़बाँ धोई है ॥

—चकबस्त

रुलाता है तेरा नज़्ज़ारा ऐ हिन्दोस्ताँ मुझको।
कि इबरत खेज़ है तेरा फ़िसाना सब फ़िसानों में ॥
दिया रोना मुझे ऐसा कि सब कुछ दे दिया गोया।
लिखा किल्के अज़ल ने मुझको तेरे नौहा ख्वानों में ॥
निशाने बर्ग-गुल तक भी न छोड़ इस बाग़ में गुलचीं।
तेरी किस्मत के रज्म-आराइयाँ हैं बाग़बानों में ॥
वतन की फ़िक्र कर नादाँ! मुसीबत आनेवाली है।
तेरी बर्बादियों के मशविरे हैं आसमानों में ॥
न समझोगे तो मिट जाओगे ए हिन्दोस्ताँ वालो।
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानों में ॥

× × ×

व' चीज़ नाम है जिसका जहाँ में आज़ादी।
सुनी जरूर है देखी कहीं नहीं मैंने ॥
खुदा तो मिलता है इन्सान ही नहीं मिलता।
य' चीज वह है कि देखी कहीं नहीं मैंने ॥

× × ×

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा ॥
गुरबत में हों अगर हम रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा ॥
पर्वत वो सब से ऊँचा हमसाया आसमाँ का।
वह सन्तरी हमारा वह पासबाँ हमारा ॥
गोदी में खेलती हैं इसकी हजारों नदियाँ!
गुलशन है जिनके दमसे रश्के जिना हमारा ॥
ऐ आबे रौदे गंगा वह दिन है याद तुमको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा ॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा ॥
यूनानो मिस्रो रोमा सब मिट गये जहाँ से।
अब तक मगर है बाक़ी नामो-निशाँ हमारा ॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जहाँ हमारा ॥
"इक़बाल" कोई मरहम अपना नहीं जहाँ में।
मालूम क्या किसी को दर्दे-निहाँ हमारा ॥

—इक़बाल

शेष

उर्दू काव्यकी अनेक सुन्दर पंक्तियाँ, जिनका हम अन्यत्र उपयोग नहीं कर सके हैं, यहाँ पाठकोंके मनोरंजनार्थ दी जाती हैं--

था ख़्वाब में ख़याल को तुझ से मुआमला,
जब आँख खुल गई न जमाँ था न सूद था।
था जिन्दगी में मर्ग का खटका लगा हुआ,
उड़ने से पेश्तर भी मेरा रंग ज़र्द हुआ।

× × ×

यही न थी हमारी क़िस्मत की विसाले यार होता,
अगर और जीते रहते यही इन्तजार होता।
इसे कौन देख सकता है यगाना है वह यगता,
जो दुई की बू भी होती तो कहीं दो चार होता।

—'ग़ालिब'

लहूका दरया जो चीरते हैं, हैं तख़्त पाते वही हक़ीक़ी।
जला भी दो तुम तअल्लुकोंको, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं॥
है मौत दुनियाँ में बस ग़नीमत, ख़रीदो इसको राहतके भाओ।
न करना चूँ तक यही है मज़हब, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं॥
ओंको कपड़े उतार दे दो, लुटा दो असबाब मालोजर सब।
खुशी से गर्दन पै तेग़ धर तब, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं॥

—स्वामी रामतीर्थ

किया मनसूर तूने फ़ाश क्यों राज़े मुहब्बत को,
अरे कमज़र्फ इसको दिल के परदों में छुपाना था।
मुक़द्दर कर दिया जंगे खुदी ने आइना दिल का,
तुझे तो आप मिट कर एक़नुमा उसको बनाना था।

—'अकबर' दानापुरी

ज़ाहिदो! हमसे क्यों तनफ्फ़ुर है?
सिनूअते कर्दार हम भी हैं!

—गौहर बेगम

ऐ 'ख़फ़ी' अश्क अपने बेतासीर,
मुफ्त में जग हँसाई करते हैं!

—बेगम ख़फ़ी

सुनके मेरा क़िस्सा थो ग़म हँसके कहता है य शोख़
हम न समझे कुछ कि इस क़िस्से का हासिल क्या हुआ!

—परी

मक़सूम की ख़ूबी है या क़िस्मत का है एहमाँ
रहता है ख़फ़ा मुझसे जो दिलबर कई दिन में?

—ज़मैयत

ख़ालिक़ है ख़ुदाए-सहरो-शाम हमारा
मशहूर हसीं ने था किया नाम हमारा

× × ×

लुत्फ़ क्या पाओगे तनहा दिले शैदा लेकर
देखिए सैर भी कुछ यारों तमन्ना लेकर!

—शीरीं

न दिल को सब्र न जी को क़रार रहता है,
तुम्हारे आने का नित इन्तज़ार रहता है!

—जनिया बेगम

शमा की तरह कौन रो जाने!
जिसके जी को लगी हो सो जाने!
अब्र छाया है; मेंह बरसता है;
जल्द आजा कि जी तरसता है!

—बेगम शोख़

गुनह क्या सनम के नज़ारे में ज़ाहिद
य' जलवा खुदा ने दिखाया तो देखा!

—'शाहब'

क्यों न मैं कुरबान हूँ, जब व' कहे नाज़ से—
हमको जफ़ा का है शौक़, अहले-वफ़ा कौन है!

—नज़ाकत

लगाया मैंने जो तुम से दिल को,
तुम्हारे दिल पर निहाँ न होगा!
पठाए सदमे हैं जितने मैंने
जहाँ में किस पर अयाँ न होगा!

—सरदार बेगम

तेरा मसकन हो तो दिल कद्र के काबिल हो जाय,
तू न हो इसमें तो सुनसान यह मञ्जिल हो जाय।
मरते दम आँखों में आकर मेरा दम अटका है,
वह जो आ जायें तो आसान वह मुश्किल हो जाय।

—'अख़तर' आबगुलबी

जिस पे क़ुरबान हों ऐशोतरबे दहर दो जहाँ,
लज़्ज़ते ग़म वही या रब मुझे हासिल हो जाय।

—'बेख़ुद' गयावी

दिल वही दिल है जो हो यार के क़दमों पे फ़िदा,
सर वही सर है जो वक़्फ़े दरे क़ातिल हो जाय।
अब ज़माना अजब उलटा है रविश उलटी है।
हम गले जिसको लगायें वही क़ातिल हो जाय।

—परवेज़ गयावी

मुझको हरगिज़ यह गवारा नहीं ऐ ग़ैरते इश्क़,
यास में नाम भी उम्मीद का शामिल हो जाय।

—अशरफ़ अमरोही

अक्से रुख़सार से रोशन जो मेरा दिल हो जाय।
वही दिल आईना कहलाने के क़ाबिल हो जाय।
तुम अगर चाहो तो मुश्किल को भी आसाँ कर दो,
मैं अगर चाहूँ तो आसान भी मुश्किल हो जाय।

—हामिद गयावी

मेरी तुरबत दिखा के कहते हैं,
अपने हाथों ये जान खो बैठे!

—नाज़ फ़र्रुख़ाबादी

आए न मुझे नींद शबे ग़म तो उसे क्या!
जो चैन से सोता है उसे किसकी पड़ी है!

—'गुलज़ार'

इससे तो वस्ल के अरमान में मरना बेहतर,
या इलाही ! न किसी से कोई मिल कर छूटे !

—'मुश्तरी'

मुँह से बोलो तो नहीं, काहे की घबराहट है ?
बात की बात में होती है बसर वस्ल की रात !

—'नाज़' (आरा)

इख़लाक़ से तो अपने वाक़िफ़ जहान हैगा ;
पर आपको ग़लत कुछ अबतक गुमान हैगा !

—चंदा

छूट गया ग़म से मेरा कुश्तए-अब्रू मर कर
इक छुरी मेरे गले पर भी, मेरी आह चला !

—बन्नो

न लगी फिर आँख सहर तलक, मुझे अपनी याद दिला गए !
मेरे पास से व' चले गए, मेरे दिल को लेके हिला गए !

× × ×

दिल मेरा उठ गया ज़माने से ;
मौत आए किसी बहाने से !

—सरदार बेगम

नाहक़ हैं नाजेहुस्न से यह बेनियाज़ियाँ
बन्दानेवाज़, आप किसी के खुदा नहीं !

—मुश्तरी

वह और मेरे घर में चले आएँ खुद-बखुद ,
सर पर मेरे, 'हजाब', मगर आसमाँ नहीं !

उनसे कह दो कि हमें तुमसे य' उम्मीद न थी,
वादा हमसे हो, रहो ग़ैर के घर वस्ल की रात।

—मुन्नीबाई 'हिजाब'

सर से पा तक कि जो हो नूर के साँचे में ढला,
ए 'शबाब' उसको भला प्यार करूँ या न करूँ?

—मुहम्मदी जान

सब से पहले किया पैदा तेरा अल्लाह ने नूर
परदए-ज़ात में उस नूर को रक्खा मस्तूर
और उस नूर का इज़हार हुआ जब मंज़ूर
'ज़ाते-पाके-तू दरीं मुल्के-अरब करदा ज़हूर
ज़ाँ सबब आमदा क़ुरआँ ब ज़बाने अरबी!'

—नवाब अख़्तर महल तैमूरिया

क्या पूछता है, हमदम! इस जाने-नातवाँ की!
रग-रग में नेशे-ग़म है, कहिए कहाँ कहाँ की!

—'जानी'

बहा है फूट के आँखों से आबला दिल का;
तरी की राह से जाता है काफ़ला दिल का!

—'दुल्हन'

दिले-नाशाद को तुमने न कभी शाद किया,
भूल कर बैठे हमें, फिर न कभी याद किया!

—'क़मर'

बन के तस्वीर 'हिजाब' उसको सरापा देखो,
मुँह से बोलो न कुछ, आँखों से तमाशा देखो!

—'हिजाब'

कहा मंसूर ने सूली प' चढ़ कर इश्क़बाज़ों से ;
य उसके बाम का ज़ीना है, आए जिसका जी चाहे !

—'ज़ाफ़री'

करें कह दो मुँह बन्द गुन्चे सब अपना—
मैं लिखती मोअम्मा हूँ उसके दहाँ का !

—'क़नर'

गिर पड़ूँ यार के कदमों प' अगर पी है शराब;
हाथ आया है बहाना मुझे बेहोशी का !

—'शर्म'

इश्क़ को दीन समझती हूँ, वफ़ा मजहब है,
ए सनम, तुझसे जो फिर जाऊँ तो काफ़िर हूँ मैं !

—'ज़िया'

दो घड़ी दिल के बहलने का सहारा भी गया,
लीजिए आज तसव्वर में भी तनहाई है।

—'मञ्ज़र' लखनवी

झोंक खाकर हुई जिस नाज़ से सीधी क़ातिल !
यह लचक तेग़ की है या तेरी अँगड़ाई है !!

—'मुनीर' लखनवी

सब मेरे दिल की रगें खिंच गई ओ मस्ते-शबाब !
तू तो यह कह के बरी हो गया अँगड़ाई है !!

—'सहरा' लखनवी

चौंक कर जाग उठे क़ब्र में सोनेवाले !
यह क़यामत भी किसी शोख़ की अँगड़ाई है !!

—'ग़ाफ़िल' इलाहाबादी

वह जो देखें मुझे आईना बना कर अपना !
फिर तो कोई न तलाशा न तमाशाई है !!

—'शफ़ीक़' अकबराबादी

या इलाही यह ग़श आया है कि मौत आई है !
आँखें क्यों बन्द किए उनका तमाशाई है !!

—'अज़ीज़' सलोनी

दरे-ज़िन्दाँ की तरफ देख के रह जाता हूँ !
बाद मरने के यह सुन कर कि बहार आई है !!

—मजज़ूब लखनवी

ज़िन्दगी में तो शबे-ग़म न कभी आँख लगी !
गोशए कब्र में आया हूँ तो नींद आई है !!

—सरशार लखनवी

अदम आबाद में दीवानों ने हलचल कर दी !
बाद मरने के यह सुन कर कि बहार आई है !!

—शफ़ीक़ लखनवी

गुल हँसे बर्क़ नशेमन पे गिरी मैं हुआ क़ैद !
मेरे गुलशन में ख़िज़ाँ बन के बहार आई है !!

—क़दीर लखनवी

और सब कहना असीराने-क़फ़स से सय्याद !
यह न कहना कि गुलिस्ताँ में बहार आई है !!

—बशीर लखनवी

देखते रहते हैं मरकद में भी ख़्वाबे-हस्ती !
मौत आई है हमें या हमें नींद आई है !!

—शातिर इलाहाबादी

फिर भी कहते हो कि है क़िस्सये-ग़म बेतासीर !
कोशिशें की हैं हँसी की तो हँसी आई है !!
—सिराज लखनवी

मुझसे पूछे कोई मैं खूब समझता हूँ इसे !
जान लेने के लिए याद तेरी आई है !!
—ग़ाफ़िल इलाहाबादी

हम तो मर जायँगे बेमौत तड़प कर सय्याद !
क्या यह सच है कि गुलिस्ताँ में बहार आई है !!
—सफ़ा अकबराबादी

जितने आते हैं वह इलाजामें जुनूँ देते हैं ।
सबका मुँह देखने वाला तेरा सौदाई है !!
—बहार लखनवी

जानता हूँ कि सितम आपके महदूद नहीं,
मैंने भी आह न करने की क़सम खाई है !!
—सफ़ा अकबराबादी

बातें मैं तेरे तसव्वर से किया करता हूँ,
कहने वाले मुझे कहते हैं कि सौदाई है !
—सरशार लखनवी

साक़िया मै से मैं तोबा करूँ तोबा तोबा,
मैंने दुनिया के देखाने को क़सम खाई है ॥
—क़दीर लखनवी

आज तोबा जो न टूटी तो क़यामत होगी
मैंने साक़ी की जवानी की क़सम खाई है ।
—मेहदी लखनवी

क्यों न मैं कुरबान हूँ जब व' कहे नाज़ से—
'हमको जफ़ा का है शौक़, अक़्ले-वफ़ा कौन है !'

—नज़ाकत

कहा य' देके जनाज़े को यार ने काँधा—
सफ़र है दूर का, यारो क़दम बढ़ाए हुए !

—मख़मूर

मैं हूँ फ़क़त और तुम, नाम नहीं ग़ैर का,
पाँव मेरी गोद में शौक़ से फैलाइए !

—क़ादरी बेगम

'दस्ती' ज़रूर चाहिए असबाबे-ज़ाहिरी ;
दुनिया के लोग देखने वाले हवा के हैं !

× × ×

जवानी में भली मालूम होती थी य' आराइश,
बुढ़ापे में तो मेंहदी-मिस्सी की है ख़ाक ज़ेबाइश !

—आराइश

य' महवे-दीदे रुख़े गुल है बुलबुले-शैदा !
ख़बर नहीं कि चमन से बहार जाती है !

—अमीर

सुर्मए ख़ाके-पा इनायत हो ;
आ गया है गुबार आँखों में !

—रमज़ो नज़ाकत

हमारे क़त्ल की तदबीर बे-तक़सीर होती है।
निगाहे-पाक की शायद यही तासीर होती है !

—फ़र्रुख़

है ऐश उसके जी को, अजी, ग़म बहुत है याँ
शादी वहाँ रचाई है मातम बहुत है याँ

—अचपल

आओ जी आओ ख़ुदा के वास्ते!
रहम फरमाओ ख़ुदा के वास्ते!
ज़ुल्फ़ें सुलझाओ ख़ुदा के वास्ते!
जी न उलझाओ ख़ुदा के वास्ते!

—ज़ोहरा अंबालवी

शेख़ी की लिया करें फ़रिश्ते!
जाने की वहाँ मजाल भी है!

'मुश्तरी'

तेरा है दुशाला मेरा कम्बल खाली।
तेरा मोल में भारी तो मेरा तोल में भारी॥

× × ×

मैं शौक़ में अपने ही से बेगाना बना हूँ
महफ़िल में मये इश्क़ का पैमाना बना हूँ।
मस्ज़िद से सरोकार न बुतख़ाने से मतलब
मैं ख़ाके रहे कूचए मैख़ाना बना हूँ।
है आर मुझे सोहबते अर्बाबे ख़िरद से,
मुश्ताक़ हूँ गिर्वीदए जानाना बना हूँ।
नासेह की नसीहत का असर मुझ पै कहाँ हो
रुसवा सरे बाज़ार हूँ दीवाना बना हूँ।
है यह कशिशे शमे सरे बज्मे हसीना
जलने के लिए शौक़ से पर्वाना बना हूँ।

हर लब पे मेरा तज़्किरए इश्क़ है जारी
अकली में हसीनों में एक अफ़साना बना हूँ ।

—'नाशाद'

तेरे दर की भूल में जाने क्या पाया है भिखारी ने ?
दुनिया छूटी पर नहीं छूटा तेरी गली का फेरा रे !
प्रीत बुरी है, या अच्छी है, जो कुछ भी है मेरी है,
अब वे तो प्यारे आन बसाया मन में प्रेम ने डेरा रे !
मेरे दिल की दुनिया प्यारे तेरे दिल की दुनिया है,
तू मेरा है, मैं तेरा हूँ, फिर क्या तेरा मेरा रे !
प्रेम के बन्धन में फँसने से कितने बन्धन टूटे हैं ?
यह मैं जानूँ, या वह जाने, जिसको प्रेम ने घेरा रे !
जब तुम सपने में भी न आयो, प्यारे फिर क्यों नींद आए ?
विरह का दीपक जब नहीं बुझता, फिर कैसे हो सवेरा रे ?

—'रविश' सद्दीकी

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूँ या रब,
क्या लुत्फ़ अन्जुमन का, जब दिल ही बुझ गया हो ।

—इक़बाल

आपका इन्तज़ार कौन करे ? और फिर बार-बार कौन करे ?
ख़ुद फ़रेबी की भी कोई हद है, नित नया एतबार कौन करे ?
दिल में शिकवे तो हैं बहुत लेकिन अब उन्हें शरमसार कौन करे ?
मैं अपने दिल का मालिक हूँ, मेरा दिल एक बस्ती है,
कभी आबाद करता हूँ, कभी बर्बाद करता हूँ ।
मुलाक़ातें भी होती हैं, मुलाक़ातों के बाद अक्सर,
वे मुझको भूल जाते हैं, मैं उनको याद करता हूँ ।

—पं० हरिचन्द 'अख़्तर'

दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे,
ऐसा न हो तकदीर तमाशा न बना दे।
मैं ढूँढ़ रहा हूँ यह मेरी शमअ किधर है।
वो बज़्म की हर चीज को परवाना बना दे॥
ऐ देखनेवालो मुझे हँस हँस के न देखो,
यह इश्क कहीं तुमको भी मुझसा न बना दे।
आखिर कोई सूरत भी तो हो ख़ानए दिल की।
काबा नहीं बनता है तो बुतख़ाना बना दे॥

—हज़रत 'बहज़ाद' लखनवी

अगर है शौक मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा।
जलाकर खुदनुमाई को, भसम तन पर लगाता जा॥
पकड़कर इश्क की झाड़ू, सफाकर हिज्र ए दिल को।
दुई की धूल को लेकर, मुसल्ले पर उड़ाता जा॥
मुसल्ला छोड़, तसबी तोड़, किताबें डाल पानी में।
पकड़ दस्त तू फिरश्तों का, गुलाम उनका कहाता जा॥
न मर भूखा न रख रोजा, न जा मस्जिद, न कर सिज्दा।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबे शौक पीता जा॥
हमेशा खा हमेशा पी, न गफलत से रहो इकदम।
नशे में सैर कर अपनी, खुदी को तू जलाता जा॥
न हो मुल्लां, न हो बम्मन, दुई को छोड़ कर पूजा।
हुक्म है शाह कलन्दर का, अनलहक तू कहाता जा॥
कहे मंसूर मस्ताना, हक मैंने दिल में पहचाना।
वही मस्तों का मयखाना, उसीके बीच आता जा॥

—मंसूर

है बहारे बाग दुनिया चंदरोज ! देख लो इसका तमाशा चंदरोज ।
ऐ मुसाफिर ! कूच का सामान कर । इस जहाँ में है बसेरा चंदरोज ॥
पूछा लुकमां से, जिया तू कितने रोज ? दस्ते हसरत मलके बोला चंदरोज ।
बाद मदफन् कब्र में बोला कजा । अब यहाँ पे सोते रहना चंदरोज ॥
फिर तुम कहाँ औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो ! साथ है मेरा तुम्हारा चंदरोज ॥
क्यों सताते हो दिले बेजुर्म को । जालिमो, है ये जमाना चंदरोज ॥
याद कर तू ऐ नजीर कबरों के रोज । जिन्दगी का है भरोसा चंदरोज ॥

——नज़ीर

रंज भी है ग़म भी है हसरत भी है अरमान भी
एक जरा से घर में तूने कितने मेहमाँ भर दिये ।
अगर ढूँढो तो अकबर में भी पाओगे हुनर कोई ।
अगर चाहो निकालो ऐब तुम अच्छे-से-अच्छे में ॥ १ ॥
गुजर उनका हुआ कब आलमे-अल्लाह अकबर में ।
पले कालेज के चक्कर में, मरे साहब के दफ्तर में ॥ २ ॥
हुए इस कदर महज्जब कभी घर का मुँह न देखा ।
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर ॥ ३ ॥
खींचो न कमानों को न तलवार निकालो ।
जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो ॥ ४ ॥
तुझे हम शायरों में क्यों न अकबर मुन्तख़ब समझें ।
बयाँ ऐसा कि दिल माने, जबाँ ऐसी कि सब समझें ॥ ५ ॥
चिपकूँ दुनिया से किस तरह मैं, औरत ने कहा कि गोद में हूँ ।
कौंसी चन्दे किधर सताएँ, कालेज ने कहा कि तोंद में हूँ ॥ ६ ॥
हम ऐसी कुल किताबें काबिले-ज़ब्ती समझते हैं ।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं ॥ ७ ॥
दर अस्ल न दीन है न दुनिया ।
पिंजरे में फुदक रही है मुनिया ॥ ८ ॥

मिहरबानी से हमें गोदाम की कुंजी तो दी।
लेकिन अब गेहूँ नहीं बाक़ी, फ़क़त घुन क्या करें ॥ ९ ॥
हँसके दुनिया में मरा कोई, कोई रोके मरा।
जिन्दगी पाई मगर उसने जो कुछ होके मरा ॥१०॥
मुसीबत में भी अब यादे-खुदा आती नहीं उनको।
दुआ मुँह से न निकली, पाकेटों से अर्जियाँ निकलीं ॥११॥
लिया सुबहे-शबे-वस्ल उनका बोसा मैंने यह सच है।
इसीपर बोल उठी वह शोख़ मिस, यह 'फाइनल टच' है ॥१२॥
तेरे बाद अकबर कहाँ ऐसी नज़्में।
वह दिल ही न होंगे कि यह आह निकले ॥१३॥

—महाकवि अकबर

वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया॥

—मौलाना हाली

छूट जायें गमके हाथों से जो निकले दम कहीं।
ख़ाक ऐसी जिन्दगी पर हम कहीं औ तुम कहीं॥

—ज़ौक

जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर।
या वह जगह बता दे जहाँ पर खुदा न हो॥
बशर ने खाक पाया, लाल पाया गोहर पाया।
मिजाज अच्छा अगर पाया, तो सब कुछ उसने भर पाया।

—दाग़

इन्सान, खोके वक्त को पाता नहीं कभी।
जो दम गुज़र गया है वो आता नहीं कभी॥

—मीर अनीस

उनके आ जाने से आ जाती है मुँह पे रौनक।
तो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा॥

—ग़ालिब

शाम से कुछ बुझा सा रहता है। दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का॥

—मीर

दी मुअज़्ज़िनने शबे वस्ल अज़ाँ पिछली रात।
हाय कम्बख़्त को किस वक़्त ख़ुदा याद आया॥

—दाग़

रंग लाती है हिना, पत्थर पै घिस जाने के बाद।
सुर्ख़ रू होता है इनसाँ, ठोकरें खाने के बाद॥

न लेता कोई सौदा मोल, बाज़ारे मुहब्बत का।
मगर कुछ जान अपनी बेचकर लेते तो हम लेते॥
लगाया जान खोने से, जो उसने, मुझको रश्क आया।
कि बोसा इन लबों का ऐ ज़फ़र! लेते तो हम लेते॥

मर गया हूँ मैं किसी की हसरते-दीदार में—
कब तक लाश हमारा राह तक्ता जायगा॥

× × ×

दिलो-जाँ, दोनों हाज़िर हैं, जो लेना है सनम लेलो।
करूँगा उज्र देने में न मैं, मुझसे क़सम लेलो॥
गले में तौक़ बेड़ी पाँव में लड़के लिये पत्थर।
अजब एक शान से ऐ जुनूँ! तेरा दीवाना आता है॥

—बहादुरशाह 'ज़फ़र'

राग गजल, भैरवी

अजब तेरा कानून देखा खुदाया !

जहाँ दिल दिया फिर वहीं तुझको पाया ॥
न याँ देखा जाता है मन्दिर औ' मसजिद।
फकत यह कि तालिब सिद्क दिल से आया ॥
जो तुझपै फिदा दिल हुआ एक बारी।
उसे प्रेम का तूने जलवा दिखाया ॥
तेरी पाक सीरत् का आशिक हुआ जो।
वही रँग रँगा फिर जो तूने रँगाया ॥
है गुमराह, जिस दिल में बाकी खुदी है।
मिला तुझसे जिसने खुदी को गँवाया ॥
हुआ तेरे विश्वासी को तेरा दरसन।
गदा को दुरे बेबहा हाथ आया।

राग गजल, सिंध काफी

बस, अब मेरे दिल में बसा एक तू है ॥
मेरे दिल का अब दिलरुबा एक तू है ॥
फकत तेरे कदमों से अय मेरे खालिक ॥
लगा अब मेरा ध्यान शामो सुबू है ॥
मेरा दिल तो तुझ से हि पाता है तसकीं ॥
बसी मग्ज में प्रेम के तेरी बू है ॥
समझते हैं यूँ मुझ को अकसर दिवाना ॥
तेरा जिक्र विरदे जबाँ कूबकू है ॥
नहीं मुझको दुनियावि खुशबू से उल्फत ॥
तेरा प्रेम ही अब मेरा मुश्को बू है ॥

रँगूँ प्रेम से तेरे दिल का ये चोला ॥
जिसे ज्ञान से अब किया कुछ रफ़ू है ॥
न पाना पड़े नफ़से शर्तां से मुझको ॥
तेरे दास की अब यही आरज़ू है ॥

ग़ज़ल क़व्वाली

गर ये हुआ तो क्या हुआ, और वो हुआ तो क्या हुआ । टेक ।
था एक दिन वह धूम का, निकले था जब असवार हो ।
हरदम पुकारे था नक़ीब, आगे बढ़ो, पीछे हटो ।
या एक दिन देखा उसे तनहा पड़ा फिरता है वह ।
बस क्या खुशी, क्या ना खुशी, यकसां है सब पे दोस्तो ।गरये०१
या नेम से खाता रहा, दौलत के दस्तर-ख्वान पर ।
मेवे मिठाई या मज़े, हलवा-ओ तुर्शी ओ शकर ।
या बाँध झोली भीख की, टुकड़े के ऊपर धर नज़र ।गरये०२
या इशरतों के ठाठ थे, या ऐश के असबाब थे ।
साक़ी, सुराही, गुलबदन, जामो - शराबे - नाब थे ।
या बेकसी के दर्द से बेताब थे, बेताब थे ।
आख़िर जो देखा दोस्तो सब कुछ ख्यालो-ख्वाब थे ।गरये०३

—स्वामी रामतीर्थ

अपनी याद

सर-फ़रोशी की तमन्ना,
जब हमारे दिल में थी ।
तब हमारी गुफ़्तगू हाँ,
हर जगह महफ़िल में थी ॥
उन गुज़ामां के दिनों की,
याद आती है हमें ।

आरज़ू-मिन्नत हमारी,
बेकसी-मोहमिल में थी ॥
सैकड़ों नारों में जैसी—
है असर होती नहीं।
वह हजारों ही गुनी सी,
आह में, बिसमिल में थी ॥
जो नहीं तसवीर सदियों—
तक विलायत में खिंची।
वह हमारे मुल्क की
होती अमाँ तिलतिल में थी ॥
आज दुनिया में हमारे
हिन्द की है रोशनी।
जो कि 'कविपुष्कर' बेचारी
झाँकती झिलमिल में थी ॥

—भाषाभूषण पं० जगन्नारायणदेव शर्मा

तू ही तू है

राग पीलू, ताल दीपचन्दी

जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है ॥
गलत है कि दीदार की आरज़ू है।
गलत है कि मुझको तेरी जुस्त जू है ॥
तेरा जल्व ये जल्वागर कूब कू है।
हुजूरी है हर वक्त तू रूबरू है॥ जिधर०
हर एक गुल में तू है कि तू ही बसा है।
सदा हामे—बुलबुल में तेरी नवा है ॥

चमन फिजे कुदरत ने तेरे हरा है।
बहारे गुलिस्ताँ में जल्वा तेरा है॥ जिधर०...

इश्क हक़ीक़ी

इश्क होवे तो हक़ीक़ी, इश्क होना चाहिये,
इस सिवा जितने हैं आशिक उन पै रोना चाहिये।
ऐशो इशरत में गुजारा, रोज सारा गरचे तुम,
रात को हक याद करके, तब तो सोना चाहिये।
बीज बोकर फल उठाया, खूब तुमने है यहाँ,
आक़बत के वास्ते, कुछ भी तो बोना चाहिये।
यों तो सोये बिस्तरे, कमख्वाब पर तुम शौक से,
सफ़र भारी सर पै है, यों भी बिछौना चाहिये।
है ग़नीमत उम्र यारो, जान को जानो अज़ीज़,
रायगाँ औ मुफ्त में, इसको न खोना चाहिये।
गर्चे दिलबर साथ है, बिन जुस्तजू मिलता नहीं,
दूध से मक्खन को चाहो, तो बिलोना चाहिये।
याद हक़ दिन-रात रख, जंजाल दुनियाँ छोड़ दे,
कुछ-न-कुछ तो तुझको ख़ालिस, तुझ में होना चाहिये।

क्या हुआ!

(गजल सोहनी)

जिन प्रेम रस चाक्खा नहीं; अमृत पिया तो क्या हुआ।
जिन इश्क में सर ना दिया, जुग-जुग जिया तो क्या हुआ।
मशहूर हुआ जो पंथ में, साबित न की प्यार को,
आलिम व फ़ाज़िल होय के, दाना हुआ तो क्या हुआ।

औरों नसीहत है करे, औ खुद अमल करता नहीं,
दिल का कुफ़र टूटा नहीं, हाजी हुआ तो क्या हुआ।
देखी गुलिस्ताँ, बोस्ताँ, मतलब न पाया शेख का;
सारी किताबें याद कर, हाफिज हुआ तो क्या हुआ।
जब तक पियाला प्रेम का पीकर मगन होता नहीं,
तार मंडल बाजते जाहिद सुना तो क्या हुआ।
जब प्रेम के दरयाव में गरकाव यह होता नहीं,
गंगा - जमन - गोदावरी, न्हाता फिरा तो क्या हुआ।
प्रीतम से किञ्चित प्रेम नहिं, प्रियतम पुकारत दिन गया,
मतलब हासिल ना हुआ, रो रो मुवा तो क्या हुआ।

—स्वामी रामतीर्थ

न टूटे!

शैदाये वतन! देखना रफ्तार न टूटे,
जोशो-गुबार दिल का खबरदार न टूटे।
जालिम लगा दे ताकतें खूँखार बेशुमार,
कुर्बानियों का पर ये बँधा तार न टूटे।
आये सपूतों लौट के आजादी तुम्हारी
ता हस्र जाँ निसारी की मीनार न टूटे।
सब टूट-फूट जाये सितमगर की तेग से,
मकसद न टूटे बाह की एतबार न टूटे।
जब तक जिगर में जान है, ताकत है हाथ में,
गाँधी की सदाकत की ये तलवार न टूटे।
ऐ जाँनिसार लाड़ले! भारत के नौजवाँ,
बेड़ा लगा दो पार कि मझधार न टूटे।

बढ़े चलो !

कठिन है मंजिल ठहर न रहबर,
अदू है शमशीर खम निकाले !
तुझे ये साबित है कर दिखाना—
कदम न मोड़ेंगे खूँ बहा ले !
खड़ी हैं हथियार-बन्द फौजें,
लगे हैं तोपों के शिस्त तुझ पर—
बिछे हैं काँटे बने बिरादर,
खुशामदी जर कमाने वाले।
न धमकियों से न गोलियों से,
मगर ये रफ्तार में कमी हो।
बहा दे जालिम, नहीं है परवाह,
हमारे खूँ के नदी व नाले।
शहद हो, आजादिये वतन का,
शरूर हो दिल में कौमियत का—
पिये हुए मस्त मय शहादत,
बढ़े चलो, शेरे दिल सम्हाले।
नहीं, खबरदार लब हिलाना,
न दिल दुखाना, न खूँ बहाना।
मिटाना चाहें, मिटाएँ हमको,
खुदाई जिल्लत मिटाने वाले।
रजील रौलट ने दिल दुखाया,
जलील डायर ने खूँ बहाया।
हो और अरमान जिसके दिल में,
तो सर है हाजिर उसे उठा ले।

बस, अब तो इस पर ही फैसला है,
स्वराज लेंगे या मर मिटेंगे।
न चैन 'माधो' को होगी तब तक,
न हम हैं खामोश रहने वाले।

—राष्ट्रकवि पं० माधव शुक्ल

राग बरवा ताल तीन

है आरफों के दिल में, भगवन्! मकान तेरा।
और वेदपाठियों के, लब पर है नाम तेरा।
काशी के बुतकदों में, कुछ तू नहीं मुकैयद।
हरजाँ है तेरा मन्दिर, हरजाँ है धाम तेरा।
जपते हैं तुमको प्यारे, दुनिया के जीव सारे।
हस्ती का तेरी शाहद, हर एक काम तेरा।
दिल साफ कर लिया है, दुनिया के मल से जिसने।
वह देखता है दिल में, दर्शन मुदाम तेरा।
आजाद को सिखा दो, प्रीती की राह अपनी।
जिससे अमर हो पीके, अमृत का जाम तेरा।

——आजाद

हिन्दोस्ताँ मेरा

जान जाने पै भी है अन्त में यों ही बयाँ मेरा,
मैं इस भारत की मिट्टी हूँ है यह हिन्दोस्ताँ मेरा।
मैं इस भारत के इक उजड़े हुए खँडहर की मिट्टी हूँ,
यही मेरा पता है, है यही नामो-निशाँ मेरा।
ख़िज़ाँ के हाथ से मुरझाये जिस गुलशन के हैं पौधे,
मैं उस गुलशनी कबुलबुल हूँ वही है गुलिस्ताँ मेरा।

कभी आबाद यह घर था किसी गुजरे जमाने में,
जो अब मालूम पड़ता है वे उजड़ा घोंसला मेरा।
अगर यह प्राण तेरे वास्ते जायें न ऐ भारत!
तो इस हस्ती के तख्ते से मिटे नामो-निशाँ मेरा।
मैं तेरा हूँ सदा तेरा रहूँगा बावफा ख़ादिम,
तुही है गुलिस्ताँ मेरा, तुही जन्नत निशाँ मेरा।
मेरे सीने में तेरे प्रेम की अग्नी भड़कती है,
निगाहों में मेरे भारत! तुही है कुल जहाँ मेरा।

क़ौमी तिरंगा झंडा हम शौक़से उड़ायें

("जगदीश यह विनय है" की तर्ज पर)

क़ौमी तिरंगे झंडे ऊँचे रहो जहाँ में।
हो तेरी सर बलंदी, ज्यों चाँद आस्माँ में॥

तू मान है हमारा, तू शान है हमारी।
तू जीत का निशाँ है, तू जान है हमारी॥

हर एक बशर की लब पर; जारी हैं ये दुआयें।
क़ौमी तिरंगा झंडा हम शौक़ से उड़ायें॥

आकाश औ ज़मीं पे हो तेरा बोल बाला।
झुक जाय तेरे आगे हर ताज तख्त वाला॥

हर कार की नजर में तू शम्न का निशाँ हो।
हो इस तरह मुअत्तर माया तेरा जहाँ हो॥

मुश्ताक़ ये भिखारी खुश हो के गा रहा है।
सिर पर तिरंगा झंडा जलवा दिखा रहा है॥

—मुश्ताक़

कदम-कदम बढ़ाये जा

कदम कदम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाये जा।
ये जिन्दगी है कौम की, तू कौम पै लुटाये जा॥
तू शेर हिन्द आगे बढ़, मरने से तू कभी न डर।
फ़लक़ तलक उठा के सर, जोशे वतन बढ़ाये जा॥
हिम्मत तेरी बढ़ती रहे, खुदा तेरी सुनता रहे।
जो सामने तेरे अड़े, तू खाक में मिलाये जा॥

दिल में

गर प्रेम की इस दिल में लगी घात न होती।
तो सच है कि मोहन से मुलाकात न होती॥
सरकार को नज़राने में देता मैं भला क्या
कुछ पास गुनाहों को जो सौगात न होती
क्यों होते मुखातिब वह भला मेरी तरफ को
आहों में कशिश की जो करामात न होती
है दर्दे मोहब्बत का फ़कत सारा तमाशा
यह दिल में न होता! तो कोई बात न होती
हग "बिन्दु" बताते हैं कि घनश्याम है दिल में
घनश्याम न होते! तो यह बरसात न होती।

——बिन्दु

गजल

नुक्ता-चीं है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने।
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने॥

मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ऐ जज़्बए दिल।
उस पै बन जाये कुछ ऐसी कि बिन आये न बने॥
बोझ सर से वह गिरा है कि उठाये न उठाये न उठे।
काम वह आन पड़ा है कि बनाये न बने॥
इश्क पर जोर नहीं है यह वह आतिश ग़ालिब।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने॥

—ग़ालिब

तुम्हारी आँखों में

जाने है क्या-क्या भरा हुआ सरकार तुम्हारी आँखों में।
दोनो दुनियाँ दोनों का है दीदार तुम्हारी आँखों में॥
तुम मार भी सकते हो पल में, और तार भी सकते हो छिन में।
विष और अमृत का रहता है, भण्डार तुम्हारी आँखों में॥
एक मूर्ति प्रकृति के प्राण की है, या छवि विराट भगवान की है।
संसार की आँखों में तुम हो, संसार तुम्हारी आँखों में॥
दिन और रात का धोखा है, या राधे श्याम का जल्वा है।
ऐसे काले गोरे रंग का है तार तुम्हारी आँखों में॥जाने०···

—राधेश्याम

तू कर फैसल हिसाब अपना

गुज़ारी वक़्त ग़फ़लत में बिगाड़ी अपनी हालत है।
हुआ ग़ाफ़िल अमल अपना, अजायब यह जहालत है॥
मुक़र्रर ग़ैर लोगों से, हमारी पर दिये फ़ितना।
न देखा मिसिल अपनी को, अजायब यह अदालत है॥

दलीलें दे के गैरों पर, किया साबित असूल अपना।
दिल अपने का न शक टूटा, अजायब यह अदालत है॥
बहुत पढ़ने पढ़ाने से हुआ सब इल्म में कामिल।
न पाया भेद रब्बी का, अजायब यह कमालत है॥
बना हाफ़िज़ पढ़े मसले, सुनाये दूसरों को भी।
बले टूटा न कुफ़र अपना, अजायब यह मसालत है॥
तू कर फैसल हिसाब अपना, तुझे औरों से क्या गोविन्द।
न क़िस्सा तूल दे इतना, फजूल ही यह तवालत है॥

—स्वामी रामतीर्थ

— :०:—

ग़ज़ल

हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या?
रहें आजाद या जग में, हमन दुनियाँ से यारी क्या?
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हमसें, हमन को इन्तजारी क्या?
ख़लक़ सब नाम अपने को, बहुत कर सर पटकता है।
हमन हरि-नाम राँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या?
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़ें पियारे से।
उन्हीं से नेह लागा है, हमन को बेक़रारी क्या?
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सर बोझ भारी क्या?

—कबीर

वैराग्य

मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥ टेक ॥

जो सुख पावों नाम भजन में,
सो सुख नाहिं अमीरी में ॥ १ ॥

भला बुरा सबको सुनि लीजै,
करि गुजरान गरीबी में ॥ २ ॥

प्रेम नगर में रहनि हमारी,
भलि बनि आई सबूरी में ॥ ३ ॥

हाथ में कूँडी बगल में सोटा,
चारों दिसा जगीरी में ॥ ४ ॥

आखिर यह तन खाक मिलेगा,
कहा फिरत मगरूरी में ॥ ५ ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो,
साहिब मिलै सबूरी में ॥ ६ ॥

—कबीर

भजन

दिल तो मेरा हर लिया, गोविन्द माधव श्याम ने।
कृष्ण कृष्ण मैं पुकारूँ तेरे दर के सामने ॥
दर्दी वाले अपनी दर्दी तू सुना दे आनकर।
तेरा चरचा हम करेंगे हर बशर के सामने ॥
खम्भ से प्रह्लाद को तूने बचाया था प्रभू।
द्रौपदी की लाज राखी कौरव दल के सामने ॥
मेरी ख्वाहिश है फकत मोहन तेरे दीदार की।
इस लिये धूनी रमाई तेरे दर के सामने ॥
कृष्ण जी दर्शन दिखा दो इस दास को आनकर।
हम तुम्हारे सामने हों तुम हमारे सामने ॥

साईं मन बौराना मोरा ॥ साईं० ॥
लाद-फाँद के चला मुसाफिर ।
किया सराय में डेरा ॥
मिलना हो तो मिल ले प्यारे ।
यहाँ हमारा फेरा ॥ साईं० ॥
माली के एक बाग लगाया ।
फूल खिला चहुँ ओरा ॥
कच्ची पक्की का मरम न जाना ।
जो चाहा सो तोड़ा ॥ साईं० ॥
लट छिटकाये वाकी तिरिया रोवे ।
बिछुड़ गया मोरा जोड़ा ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ।
जिन जोड़ा तिन तोड़ा ॥ साईं० ॥

—कबीर

नजरके नजारे

नजर से होते नजारे कोई बताते हैं ।
नजर से होते इशारे कोई बताते हैं ॥
नजर से होते सहारे कोई बताते हैं ।
नजर से होते गुजारे कोई बताते हैं ॥
नजर से होती मुहब्बत कोई बताते हैं ।
नजर से होती मुरब्बत कोई बताते हैं ॥
नजर में होती नसीहत कोई बताते हैं ।
नजर में होती फजीहत कोई बताते हैं ॥
नजर में होती हिदायत कोई बताते हैं ।
नजर में होती शिकायत कोई बताते हैं ॥

नजर में होती शराफत कोई बताते हैं ।
नजर में होती शरारत कोई बताते हैं ॥
नजर है होती नियामत कोई बताते हैं ।
नजर है होती कयामत कोई बताते हैं ॥
नजर के बाग में कितने बसाये जाते हैं ।
नजर की आग में कितने जलाये जाते हैं ॥
नजर की ओट में कितने सुलाये जाते हैं ।
नजर की चोट में कितने रुलाये जाते हैं ॥
नजर के काम मे कितने भुलाये जाते हैं ।
नजर के नाम से कितने डुराये जाते हैं ॥
नजर हमारी नजर हो चुकी तुम्हारी है ।
नजर तुम्हारी नजर हो चुकी हमारी है ॥
नजर लगाने से नजरें लगाई जाती हैं ।
नजर हटाने से नजरें हटाई जाती हैं ॥
नजर में कोई उजर यार हो नहीं पाती ।
उजर में कोई नजर यार हो नहीं पाती ॥
नजर में होती असर हम बताये देते हैं ।
नजर में जाने जिगर हम बताये देते हैं ॥

—'कवि पुष्कर' शास्त्री

मय हो मीना हो औ साकी हो पिलाने के लिये,
तब मज़ा देती है यह काली घटा बरसात की ।
रात भर रोया किया दिल रात भर दुखा रहा,
रात भर आँखों से बरसी है घटा बरसात की ।
बाग पर आकर किसी ने बाल जब बिखरा दिये,
पानी पानी हो गयी काली घटा बरसात की ।

माँग साक़ी ने निकाली है कि चमकी बिजलियाँ,
ज़ुल्फ़ खोली है किसी ने या घटा बरसात की।
जितने तुमसे लुट सकें 'आज़ाद' मोती लूट लो,
आज फ़ैय्याज़ी पै है काली घटा बरसात की।

—'आज़ाद' कलकत्ता

देख सावन के फुहारें आ गई मस्ती उन्हें,
काली काली दिलरुबा लगती घटा बरसात की।
अब्र गरजा शब को जब तो वह लिपट रोने लगे,
फट पड़ी आफ़त कहाँ से या ख़ुदा बरसात की।
बन सँवर कर आज झूले पै वह गाते हैं मल्हार,
छू गई सावन में उनको भी हवा बरसात की।
सब्ज़ चोली पहन कर वह ज़ुल्फ़ हैं खोले हुये,
क्या ग़ज़ब ढाती है सावन में घटा बरसात की।
आज ज़ाहिद भी हुआ मस्ते मये एतहार है,
तोबह शिकन कितनी है यह देखो हवा बरसात की।
ताल औ तालाब नदियाँ और नाले चढ़ चले,
खूब जी भर भर के रोई है घटा बरसात की।
कोयलें कूकीं दरख्तों से पपीहे बोल उठे,
फूल 'गुलशन' में खिला आई सबा बरसात की।

'गुलशन' बनारसी

बीती बहारे गुलशन, हर ओर रंजोग़म है।
खुशख़त सबाब का भी अब हो चुका खतम है॥
शाखों पै बैठ बुलबुल, होती थीं मश्त गाकर।
चलती बनीं किधर को, यारब किधर से आकर॥

—शेख शादी